इकाई–५

अर्थ-व्यवस्था और आजीविका

किसी भी राष्ट्रीय अर्थ–व्यवस्था का मूल आधार कृषि एवं उद्योग होता है, जिस पर लोगों की आजीविका निर्भर करती है। आधुनिक युग में कृषि की तुलना में उद्योगों का महत्व बहुत अधिक बढ़ा है और देश की अर्थव्यवस्था में इनके योगदान में भी समानुपातिक वृद्धि हुई है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन विश्व का पहला देश बना, जहाँ कृषि क्षेत्र एवं उद्योग जगत में मशीनीकरण प्रारंभ हुआ और औद्योगीकरण के एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

औद्योगीकरण अथवा उद्योगों की वृहत रूप में स्थापना उस औद्योगिक क्रांति की देन है, जिसमें वस्तुओं का उत्पादन मानव श्रम के द्वारा न होकर मशीनों के द्वारा होता है। इसमें उत्पादन वृहत पैमाने पर होता है और जिसकी खपत के लिए बड़े बाजार की आवश्यकता होती है। किसी भी देश के आधुनिकीकरण का एक प्रेरक तत्व उसका औद्योगीकरण होता है। नये–नये मशीनों का आविष्कार एवं तकनीकि विकास पर ही औद्योगीकरण निर्भर करता है। इसके प्रेरक तत्व के रूप में मशीनों के अलावे पूँजी निवेश एवं श्रम का भी महत्वपूर्ण स्थान है। साधारणतया औधोगीकरण ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें उत्पादन मशीनों द्वारा कारखानों में होता है। इस प्रक्रिया के तहत ही ब्रिटेन में सर्वप्रथम घरेलू उत्पादन पद्धति का स्थान कारखाना पद्धति ने ले लिया।



कुटीर उद्योग का चित्र



कारखानें में मशीनी उद्योग का चित्र

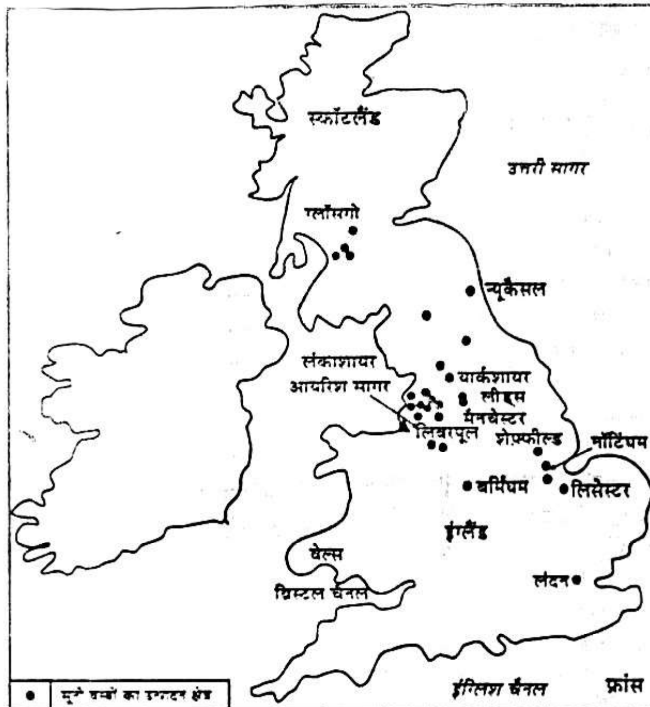
सन् 1750 ई० तक ब्रिटेन मुख्य रूप से कृषि प्रधान देश था। देश की 80% जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी। अपना और अपने आश्रितों का भरण-पोषण वह कृषि द्वारा करती थी। सूत उद्योग, ऊन उद्योग, काँच, लोहा और मिट्टी के बर्त्तन का उद्योग गाँवों में कृषकों द्वारा किया जाता था। इन उद्योगों में काम करने वाले कारीगर अपने हाथ से अथवा हाथ से चलाये जानेवाले यंत्रों से वस्तुओं का उत्पादन करते थे। इन उद्योगों में प्रमुख कपड़ा उद्योग था। यूरोप के अन्य देशों के साथ-साथ ब्रिटेन में भी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था, जो प्राय: घरों में मानव चालित यंत्रों के द्वारा होता था। सतरहवीं-अठारहवीं शताब्दी में शहरों में गिल्ड प्रथा का प्रचलन था। गिल्ड से जुड़े उत्पादक निपुणता एवं विशिष्टता के लिए प्रसिद्ध थे। उनका व्यापार पर एकाधिपत्य था। अत: बढ़ती हुई मांगों की वजह से ये व्यापारी गाँवों की तरफ रूख करने लगे। उन्होंने गाँव के किसानों एवं मजदूरों से काम लेना शुरू किया। उन्हें प्रशिक्षण देकर वे अपने नियंत्रण में रखने लगे। उत्पादित वस्तुओं की बढ़ती हुई मांगों ने गाँवों में भी रोजगार के अवसर प्रदान किए और कुटीर-उद्योग का बहुत अधिक विकास हुआ, जिसमें पुरूषों के साथ महिलाओं एवं बच्चों की भी भागीदारी बढ़ी। ब्रिटेन के गाँवों में रंगाई एवं छपाई का काम भी होता था। इसके बाद उसका निर्यात उपनिवेशों के बाजार में कर दिया जाता था। इस तरह औद्योगीकरण, जिसमें उत्पादन का मशीनीकरण हुआ, के पहले भी औद्योगिक विकास का दौर जारी था, जिसमें घरों में मानव श्रम से कुटीर उद्योग के द्वारा उत्पादन किया जाता था और कुटीर उद्योग विकासोन्मुख था। यह दौर आदि-औद्योगीकरण (Proto Industrialisation) के नाम से जाना जाता है।

औद्योगीकरण के कारण : ब्रिटेन में स्वतंत्र व्यापार (Free Trade) और अहस्तक्षेप की नीति (Policy of Lasissez faire) ने ब्रिटिश व्यापार को बहुत अधिक विकसित किया। उत्पादित वस्तुओं की मांग बढ़ने लगी। तात्कालिक ढाँचे के अन्तर्गत व्यापारियों के लिए उत्पादन में अधिक वृद्धि कर पाना असम्भव सा था। एक तरफ बुनकरों को धागे के अभाव में काफी समय तक बेकार बैठे रहना पड़ता था तो दूसरी तरफ सूत कातने वाले हमेशा ही व्यस्त रहते थे। पूरे समय काम करने वाला एक बुनकर 6 सूत कातने वाले लोगों द्वारा तैयार किए गए धागों का उपयोग कर सकता था। ऐसी स्थिति में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी, जिससे सूत का उत्पादन

कारण

१. आवश्यकता आविष्कार की जननी
२. नये-नये मशीनों का आविष्कार
३. कोयले एवं लोहे की प्रचुरता
४. फैक्ट्री प्रणाली की शुरूआत
५. सस्ते श्रम की उपलब्धता
६. यातायाता की सुविधा
७. विशाल औपनिवेशक स्थिति

काफी बढ़ सके। यही वह सबसे प्रमुख कारण था, जिसकी वजहसे ब्रिटेन में औद्योगीकरण के आरम्भिक वर्षों में आविष्कारों की जो एक श्रृंखला बनी, वह सूती वस्त्र उद्योग के क्षेत्र से अधिक सम्बंधित थी।

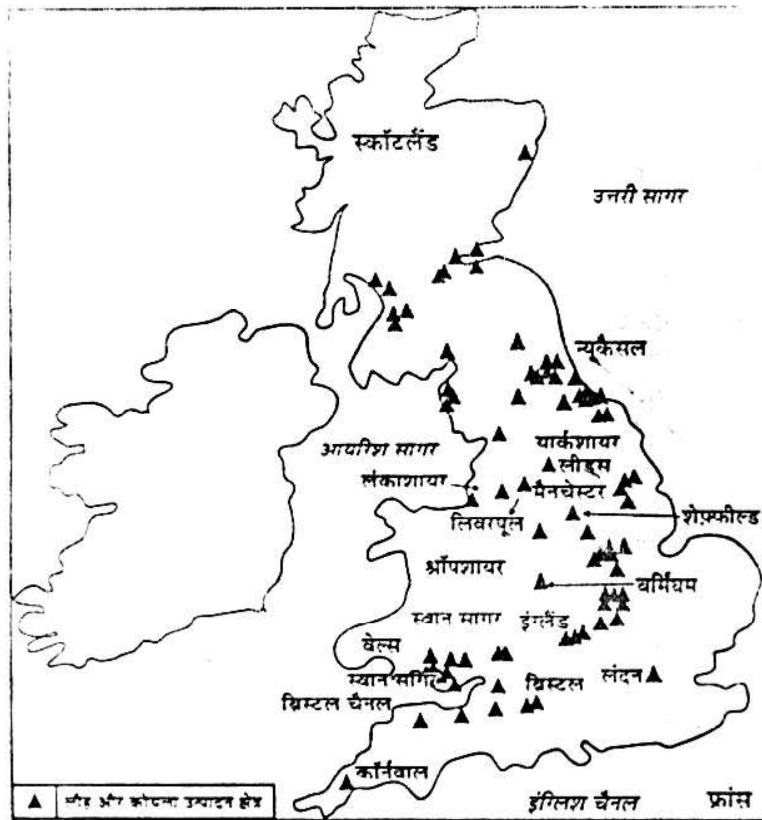


मानचित्र-ब्रिटेन में सूती वस्त्रों के उत्पादन क्षेत्र

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटेन में नये-नये यंत्रों एवं मशीनों के आविष्कार ने उद्योग जगत में ऐसी क्रांति का सूत्रपात किया, जिससे औद्योगीकरण एवं उपनिवेशवाद दोनों का मार्ग प्रशस्त हुआ। सन् 1769 में बॉल्टन निवासी रिचर्ड आर्कराइट ने सूत कातने की स्पिनिंग फ्रेम (Spinning Frame) नामक एक मशीन बनाई जो जलशक्ति से चलती थी। सन् 1770 में स्टैंडहील निवासी जेम्स हारग्रीब्ज ने सूत काटने की एक अलग मशीन **'स्पिनिंग जेनी'** (Spinning Jenny) बनाई। इसमें सोलह तकुए एक पहिये के घूमने से चलते थे, अत: इसकी सहायता से आठ सूत एक साथ काता जा सकता था। सन् 1773 में लंकाशायर के जॉन के ने **'फ्लाइंग शट्‌ल'** (Flying Shuttle) का आविष्कार किया, जिसके द्वारा जुलाहे बड़ी तेजी से काम करने लगे और धागे की मांग बढ़ गयी। सन् 1779 में सैम्यूल क्राम्पटन ने **'स्पिनिंग म्यूल'** (Spinning Mule) बनाया, जिससे बारीक सूत काता जा सकता था। सन् 1785 में एडमंड कार्टराइट ने वाष्प से चलने वाला **'पावरलुम'** (Power-Loom) नामक करघा तैयार किया। इसी समय बेनर नामक व्यक्ति ने कपड़ा छापने का एक यंत्र बनाया। टॉमस बेल के 'बेलनाकार छपाई' (Cylindrical Printing) के आविष्कार ने तो सूती वस्त्रों की रंगाई एवं छपाई में नई क्रांति ला दी। इन आविष्कारों के फलस्वरूप सन् 1820 ई० तक ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग में काफी वृद्धि हुई। इन उद्योगों में सन् 1769 में जेम्स वॉट द्वारा बनाये गये वाष्प इंजन की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

चूँकि वस्त्र उद्योग की प्रगति कोयले एवं लोहे के उद्योग पर बहुत अधिक निर्भर करती है, इसलिए अंग्रेजों ने इन उद्योगों पर बहुत अधिक ध्यान दिया। ब्रिटेन में कोयले एवं लोहे की खानें थी। वाष्प इंजन बनने के बाद अपने देश के लिए तथा निर्यात करने के लिए रेलवे इंजन तैयार होने लगे। सन् 1815 में हम्फ्रीडेवी ने खानों में काम करने लिए एक 'सेफ्टी लैम्प' (Safety-Lamp) का आविष्कार किया। इसी तरह सन् 1815 ई० में हेनरी बेसेमर ने एक शक्तिशाली भट्टी विकसित करके लौह उद्योग को और भी बढ़ावा दिया।

मशीनों एवं नये-नये यंत्रों के आविष्कार ने फैक्ट्री प्रणाली को विकसित किया, फलस्वरूप उद्योग तथा व्यापार के नये-नये केन्द्रों का जन्म हुआ। लिवरपुल में स्थित लंकाशायर सूती वस्त्र उद्योग का केन्द्र बनाया गया। मैनचेस्टर भी सूती वस्त्र उद्योग का बड़ा केन्द्र बना। सन् 1805 के बाद न्यू साउथ वेल्स ऊन उत्पादन का केन्द्र बना और बड़े-बड़े भेड़ फार्मों की स्थापना हुई। रेशम उद्योग तथा सन् उद्योग (Linen Industry) का भी ब्रिटेन में बहुत विकास हुआ।



मानचित्र ब्रिटेन में लोहा एवं कोयला उत्पादक क्षेत्र

औद्योगीकरण में ब्रिटेन में सस्ते श्रम की आवश्यकता की भूमिका भी अग्रणी रही है। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में बाड़ाबन्दी प्रथा की शुरूआत हुई, जिसमें जमींदारों ने छोटे-छोटे खेतों को खरीदकर बड़े-बड़े फार्म स्थापित कर लिए। अपनी जमीन बेच देने वाले छोटे

किसान भूमिहीन मजदूर बन गए। ये आजीविका उपार्जन के लिए काम धंधों की खोज में निकटवर्ती शहर चले गए। इस तरह मशीनों द्वारा फैक्ट्री में काम करने के लिए असंख्य मजूदर कम मजदूरी पर भी तैयार हो जाते थे। सस्ते श्रम ने उत्पादन के क्षेत्र में सहायता पहुँचाई।

फैक्ट्री में उत्पादित वस्तुओं को एक जगह से दूसरे जगह पर ले जाने तथा कच्चा माल को फैक्ट्री तक लाने के लिए ब्रिटेन में यातायात की अच्छी सुविधा उपलब्ध थी। रेलमार्ग शुरू होने से पहले नदियों एवं समुद्र के रास्ते व्यापार होता था। नदी पोतों द्वारा लाया जाने वाला माल सरलतापूर्वक तटपोतों (Coaster) अर्थात समुद्री जहाजों तक ले जाया जाता था। जहाजरानी उद्योग में यह विश्व में अग्रणी देश था और सभी देशों के सामानों का आयात निर्यात मुख्यतया ब्रिटेन के व्यापारिक जहाजी बेड़े से ही होता था, जिसका आर्थिक लाभ औद्योगीकरण की गति को तीव्र करने में सहायक बना।

औद्योगीकरण की दिशा में ब्रिटेन द्वारा स्थापित विशाल उपनिवेशों ने भी योगदान दिया। इन उपनिवेशों से कच्चा माल सस्ते दामों में प्राप्त करना तथा उत्पादित वस्तुओं को वहाँ के बाजारों में मंहगे दामों पर बेचना ब्रिटेन के लिए आसान था।

उपनिवेशवाद : मशीनों के आविष्कार तथा फैक्ट्रियों की स्थापना से उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। उत्पादित वस्तुओं की खपत के लिए ब्रिटेन तथा आगे चलकर यूरोप के अन्य देशों को, जहाँ कारखानों की स्थापना हो चुकी थी, बाजार की आवश्यकता पड़ी। इससे उपनिवेशवाद को बढ़ावा मिला। इसी क्रम में भारत ब्रिटेन के एक विशाल उपनिवेश के रूप में उभरा। संसाधन की प्रचुरता ने उन्हें भारत की तरफ व्यापार करने के लिए आकर्षित किया। भारत सिर्फ प्राकृतिक एवं कृत्रिम संसाधनों में ही सम्पन्न नहीं था, बल्कि यह उनका एक वृहत् बाजार भी साबित हुआ।

अठारहवीं शताब्दी तक भारतीय उद्योग विश्व में सबसे अधिक विकसित थे। भारत विश्व का सबसे बड़ा कार्यशाला था, जो बहुत ही सुन्दर एवं उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन करता था। जब तक मशीनों का आविष्कार नहीं हुआ था, भारतीय हस्तकला, शिल्प उद्योग तथा व्यापार पर ब्रिटिश नियंत्रण कायम था। शिल्पकारों को दी जाने वाली मजदूरी इतनी कम होती थी कि कई बार उन्हें न्यूनतम जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी भी नहीं दी जाती थी। अंग्रेज व्यापारी एजेंट की मदद से यहाँ के कारीगरों को पेशगी रकम देकर उनसे उत्पादन करवाते थे। ये एजेंट 'गुमाश्ता' कहलाते थे। ये गुमाश्ता शिल्पकारों से सामान भी मनमाने दामों पर खरीदते थे और उनका निर्यात इंगलैंड

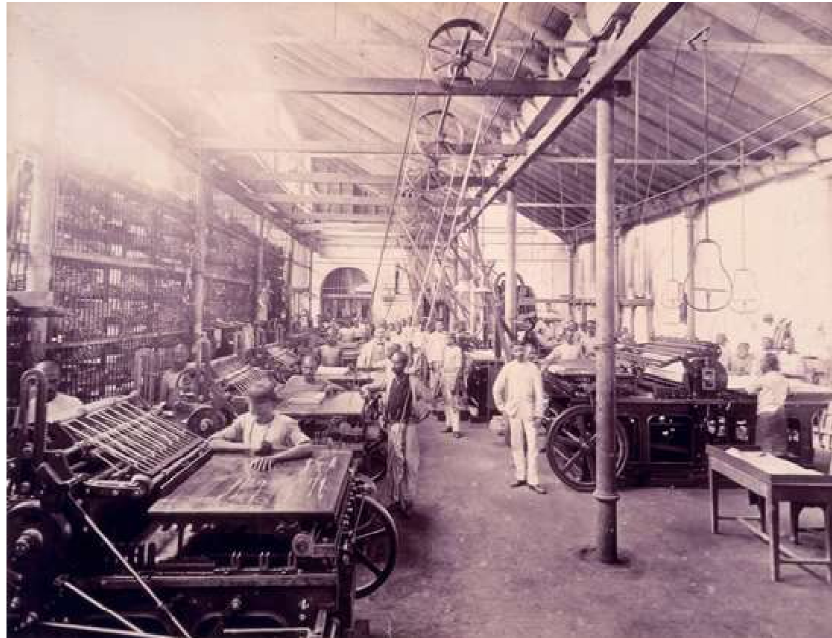
करते थे। सन् 1813 ई० में ब्रिटिश संसद द्वारा पारित 'चार्टर एक्ट' (Charter Act) व्यापार पर से इस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिपत्य समाप्त कर दिया और स्वतंत्र व्यापार की नीति (Policy of Free Trade) का मार्ग प्रशस्त किया गया।

सन् 1850 ई० के बाद ब्रिटिश सरकार ने अपने उद्योगों को विकसित करने के लिए अनेक ऐसे कदम उठाए, जिनकी वजह से इस अवधि में एक के बाद एक देशी उद्योग लगातार खत्म होने लगे। ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गयी मुक्त व्यापार की नीति की वजह से भारत में निर्मित वस्तुओं पर ब्रिटेन में ब्रिकी के लिए भारी कर लगा दिया गया। भारत से कच्चा माल का निर्यात किया जाने लगा। भारतीय वस्तुओं के निर्यात पर सीमा शुल्क और परिवहन कर भी लगाया जाने लगा। अब भारत में रहने वाले अंग्रेजों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की गयीं तथा यहाँ आयात -निर्यात की सुविधा के लिए रेलवे का निर्माण किया गया। धीरे-धीरे ब्रिटिश पूँजी से भारत में कारखानों की स्थापना की जाने लगी। सूती वस्त्रों का आयात भी किया जाने लगा। सन् 1850 के बाद मैनचेस्टर से भारी मात्रा में वस्त्र आयात शुरू हो गया था। भारत में अब कुटीर-उद्योग के शिल्पकारों एवं कास्तकारों को कच्चा माल के लाले पड़ गये । उन्हें मनमानी कीमत पर कच्चा माल खरीदना-पड़ता था । अत: धीरे-धीरे कुटीर उद्योग बन्द कर ये शिल्पकार एवं कारीगर खेती करने को मजबुर हो गये । 1850 के बाद जब भारत में कारखानों की स्थापना होनी शुरू हुई तब यही बेरोजगार लोग गाँवों से शहरों की तरफ पलायन कर गए, जहाँ उन्हें मजदूर के रूप में रख लिया जाता था । एक तरफ जहाँ मशीनों के अविष्कार ने उद्योग एवं उत्पादन में वृद्धि कर औद्यौगीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत की थी, वहीं भारत में कुटीर उद्योग बन्द होने की कगार पर पहुँच गया था । भारतीय इतिहासकारों ने इसे भारत के उद्योग के लिए निरूद्योगीकरण (Deindustrialisatian) की संज्ञा दी है ।

भारत में फैक्ट्रियों की स्थापना

औद्योगिक उत्पादन से भारत में कुटीर उद्योग तो बन्द हो गए, लेकिन वस्त्र उद्योग के लिए कई बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ देशी एवं विदेशी पूँजी लगाकर खोली गयीं, जिससे कारखाना उद्योग को बढ़ावा मिला । कारखानों की स्थापना के क्रम में सन् 1830-40 के दशक में बंगाल में द्वारकानाथ टैगोर ने 6 संयुक्त उद्यम कपनियाँ लगा ली थी । सर्वप्रथम सूती कपड़े की मिल की नींव 1851

ई० में बम्बई में डाली गयी । यहाँ पारसी, गुजराती और बोहरा मुसलमान आदि जातियों के लोग सूती धागे और सूती कपड़ा तैयार करने वाले आधुनिक कारखाने के निर्माण में लग गए थे । पारसी कावस–जी–नाना–जी–दाभार ने सन् 1854 में पहला कारखाना निर्मित किया और तभी से इस उद्योग का इतिहास भारत में शुरू हुआ ।



बम्बई कपड़ा मिल का चित्र

सन् 1854 से 1880 तक तीस कारखानों का निर्माण हुआ, जिसमें तेरह पारसियों द्वारा बनाए गए थे । सन् 1869 में स्वेज–नहर के खुल जाने से बम्बई के बन्दरगाह पर इंगलैंड से आने वाला सूती कपड़ों का आयात बढ़ने लगा । इसके वावजुद भी सन् 1880 से 1895 तक सूती कपड़ों के मिलों की संख्या उनचालिस से अधिक हो गई । इसने मैनचस्टर के कपड़ा उद्योग को चिंता में डाल दिया, जिसकी वजह से ब्रिटिश सरकार वहाँ से आयात किए जाने वाले माल पर से आयात शुल्क समाप्त कर दिया । इससे भारतीय बाजारों में वहाँ का सामान अपेक्षाकृत कम मूल्यों में बिकने लगा । इस समय सस्ता मशीनों का आयात करके भारत में सूती वस्त्र उद्योग को बहुत बढ़ाया गया। सन् 1895 से 1914 तक के बीच सूती मिलों की संख्या 144 तक पहुँच गयी थी और भारतीय सूती धागे का निर्यात चीन को होने लगा था।

सन् 1917 में कलकत्ता में देश की पहली जूट मिल एक मारवाड़ी व्यवसायी हुकुम चंद ने स्थापित किया। सन् 1918 में पहले पहल एक लिमिटेड कम्पनी के रूप में विड़ला ब्रदर्स की स्थापना हुई। सन् 1919 में बिड़ला जूट कम्पनी और 1920 में ग्वालियर में जियाजी राव सूती कारखाना खुला । घनश्याम दास विड़ला ने अंग्रेजी-कम्पनियों से अनेक चालू कारखाने खरीदकर अपने व्यापार को बढ़ाया, जैसे–एंडविल से केशवराव कॉटन मिल और मार्टिन से चीनी के कारखाने।



घनश्याम दास बिड़ला

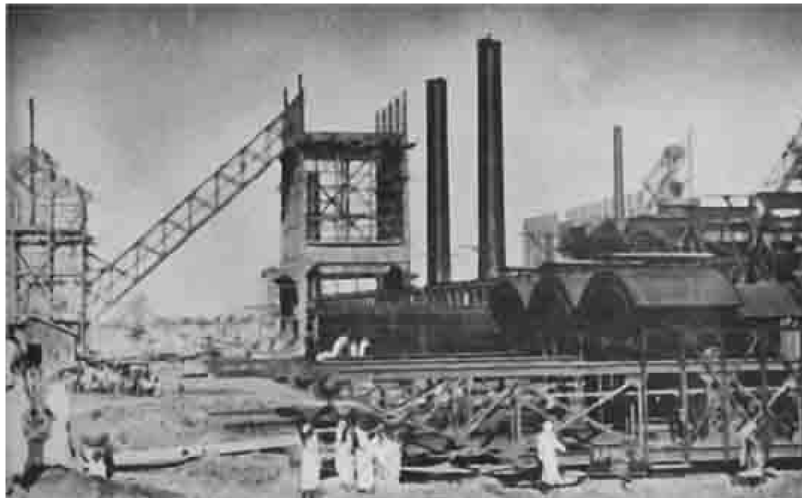


जमशेद जी टाटा

सन् 1907 ई० में जमशेद जी टाटा ने बिहार के साकची नामक स्थान पर टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (Tisco) की स्थापना की । जमशेद जी टाटा एक ऐसे भारतीय थे, जिनमें भारतीय उद्योग की काफी सूझ-बूझ थी और 1910 ई० में उन्होंने टाटा हाइड्रो-इलेक्ट्रीक पावर स्टेशन की स्थापना की । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लौह उद्योग ने काफी प्रगति की । 1955 में भिलाई, राउर केला और दुर्गापुर में इस्पात कारखाना खोलने की सहमति रूस, पश्चिम जर्मनी और ब्रिटेन के समझौतों के आधार पर ली गयी । अभी भारत में 7 स्टील प्लांट हैं ।

1. इंडियन-आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, हीरापुर
2. टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, जमशेदपुर
3. विशेश्वरैया आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, भद्रावती (कर्नाटक)
4. राउरकेला स्टील प्लाट, राउरकेला

5. भिलाई स्टील प्लांट, भिलाई
6. दुर्गापुर स्टील प्लांट, दुर्गापुर
7. बोकारो स्टील प्लांट, बोकारो



(Tisco का फोटो)

भारत में कोयला उद्योग का प्रारम्भ सन् 1814 में हुआ, जब रानीगंज, पश्चिम बंगाल में कोयले की खुदाई का काम प्रारम्भ किया गया था। रेल के विकास के साथ ही सन् 1853 के बाद इसका विकास आरम्भ हुआ। इसका उत्पादन बढ़ाने के लिए मशीनों का प्रयोग शुरू हुआ। नवीन उद्योग की स्थापना ने कायेले की मांग बढ़ा दी। 1868 ई० में जहाँ उत्पादन 5 लाख टन था, वहाँ 1950 में बढ़कर 3.23 करोड़ टन हो गया। तत्कालीन बिहार इस उद्योग का मुख्य केन्द्र था।

सन् 1850-60 के पश्चात भारत में बागीचा उद्योग अर्थात नील, चाय, कॉफी, रबड़ और पटसन मिलें आरम्भ हो गयीं। यद्यपि इन उद्योगों में से अधिक संख्या उन उद्योगपतियों की थी, जो विदेशी थे और जिन्हें सरकार का प्रोत्साहन प्राप्त था। सन् 1916 में सरकार ने एक औद्योगिक आयोग नियुक्त किया ताकि वह भारतीय उद्योग तथा व्यापार के भारतीय वित्त से सम्बंधित प्रयत्नों के लिए उन क्षेत्रों का पता लगाये जिसे सरकार सहायता दे सके। सन् 1921 में सरकार ने एक राजस्व आयोग नियुक्त किया और उस वर्ष उसके प्रधान श्री इब्राहिम रहिमतुल्ला बनाये गए। इसके तहत 1924 ई० में टीन उद्योग, कागज उद्योग, केमिकल उद्योग, चीनी उद्योग, आदि की स्थापना हुई। 1930 के दशक में सीमेंट और शीशा उद्योग की भी स्थापना हुई।

सन् 1850 से 1914 तक के उद्योग की यह विशेषता थी कि इस काल में निर्यात किए जाने वाले ऐसे मालों का भी उत्पादन हुआ, जो राष्ट्र के लिए लाभदायक था, जैसे–पटसन और चाय। इसके साथ ही उस माल का भी उत्पादन हुआ जिसमें विदेशी प्रतिद्वन्दिता ज्यादा नहीं थी जैसे-मोटा कपड़ा। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय उद्योगों को लाभ हुआ और देशी उत्पादित वस्तुओं को देश के अन्दर एवं बाहर मंडी प्राप्त हुई, युद्ध के ठेके मिले, कच्चा माल पहले से कम दाम पर उपलब्ध हुआ और उत्पादित माल के ऊँचे दाम प्राप्त हुए।

सन् 1929-33 के विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का भारतीय उद्योग पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारत प्राथमिक सामग्री के लिए आत्म निर्भर था, जिसका मूल्य घटकर आधा हो गया था। निर्यात किए जाने वाले सामानों का भी मूल्य घट गया। इस तरह उद्योग पर निर्भर जनता की दिनों दिन क्षति होने लगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय मिलों द्वारा उत्पादित सूती कपड़ों की सम्पूर्ण मांग को अब भारतीय मिलें ही पूरा कर रही थीं। भारतीय मिल मालिकों ने इस अवसर का लाभ उठाया और विदेशी मंडियो में प्रवेश करना शुरू कर दिया। लड़ाई के दौरान भारत की अपनी कोई इंजिनियरिंग इन्डस्ट्री नहीं थी और न ही अपने मशीनों या यंत्रों के निर्माण करने की इन्डस्ट्री (उद्योग) थी। केवल वे उद्योग की स्थापित हो सके थे जो ब्रिटेन या अमेरिका में बनाई जाने वाली मशीनों का गठन करते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमेरिका भारत के व्यापार का एक मुख्य साझेदार हो गया। वह भारत को अब उपयोगी सामान देने लगा और भारत से कच्चा माल मंगाने लगा। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, क्योंकि युद्ध के समय वहाँ की उत्पादन क्षमता में काफी वृद्धि हुई थी।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले तक यूरोप की कंपनियां व्यापार में पूँजी लगाती थी। यह प्रबंधकीय ऐजेंसियों के द्वारा होता था, जो उद्योगों पर नियंत्रण भी रखती थी। इनमें बर्ड हिगलर्स एण्ड कम्पनी, एंड्रयूयूल और जार्डीन स्किनर एण्ड कम्पनी, सबसे बड़ी कंपिनियां थीं। यद्यपि, भारत में 1895 में पंजाब नेशनल बैंक, 1906 में बैंक ऑफ इंडिया, 1907 में इंडियन बैंक, 1911 में सेन्ट्रल बैंक, 1913 में द बैंक ऑफ मैसूर तथा ज्बाइंट स्टॉक बैंकों की स्थापना हुई। ये बैंक भारतीय उद्योगों के विकास में सहायक थे।

औद्योगीकरण का परिणाम :

परिणाम
1. नगरों का विकास ।
2. कुटीर उद्योग का पतन ।
3. साम्राज्यवाद का विकास ।
4. समाज में वर्ग विभाजन एवं बुर्जआ वर्ग का उदय ।
5. फैक्ट्री मजदूर वर्ग का जन्म ।
6. स्लम पद्धति की शुरूआत ।

सन् 1850 से 1950 ई ० के बीच भारत में वस्त्र उद्योग, लौह उद्योग, सीमेन्ट उद्योग, कोयला उद्योग जैसे कई उद्योगों का विकास हुआ। जमशेदपुर, सिन्द्री, धनबाद तथा डालमियानगर आदि नये व्यापारिक नगर तत्कालीन बिहार राज्य में कायम हुए। बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों के कायम हो जाने से प्राचीन गृह उद्योग का पतन आरम्भ हो गया। हाथ से तैयार किया हुआ माल मंहगा पड़ने लगा, उसकी बिक्री खत्म होने लगी, नतीजा यह हुआ कि प्राचीन उद्योगों का लोप होने लगा। आजाद भारत में इन कलाकृतियों को पुनः प्रचलित करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं, जिसके मुख्य केन्द्र आगरा, बनारस अहमदाबाद, सूरत, राजपुताना आदि के कुछ शहर हैं।

औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप इग्लैंड में हाथ के करघे से काम करने वाले पुराने बुनकरों के तबाही के साथ-साथ नये मशीनों का आविष्कार हुआ था । लेकिन भारत में लाखों शिल्पियों एवं कारीगरों की तबाही के साथ-साथ विकल्प के रूप में उस स्तर के किसी नये उद्योग का विकास नहीं हुआ । ढाका, मुर्शिदाबाद, सूरत आदि पर औद्योगीकरण का बुरा प्रभाव पड़ा । उनके शिल्पी एवं कारीगरों ने खेती को अपनी आजीविका का सहारा बनाया । इस प्रकार भारत में जो कृषि एवं उद्योग का संतुलन था, वह नष्ट हो गया ।

औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप बड़े पैमाने पर उत्पादन होना शुरू हुआ, जिसकी खपत के लिए यूरोप में उपनिवेशों की होड़ शुरू हो गयी और आगे चलकर इस उपनिवेशवाद ने साम्राज्यवाद का रूप ले लिया । उपनिवेशवाद में जहाँ एक तरफ तकनीक रूप से कमजोर देश पर आर्थिक नियंत्रण स्थापित किया जाता है वहीं साम्राज्यवाद में आर्थिक और राजनैतिक दोनों तरह के नियंत्रण स्थापित हो जाते हैं ।

औद्योगीकरण के फलस्वरूप ब्रिटिश सहयोग से भारत के उद्योग में पूँजी लगाने वाले उद्योगपति पूँजीपति बन गये । अतः समाज में तीन वर्गों का उदय हुआ – पूँजीपति वर्ग बुर्जुआ वर्ग (मध्यम वर्ग) एवं मजदूर वर्ग । आगे चलकर यही बुर्जुआ वर्ग भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में अंग्रेजों की औपनिवेशिक एवं शोषण की नीति के खिलाफ सक्रिय भूमिका निभाया ।

औद्योगीकरण ने एक नये तरह के मजदूर वर्ग को जन्म दिया । यद्धपि भारत में मजदूर 1850 ई० से पहले चाय, कॉफी और रबड़ आदि के बगानों में काम करते थे, लेकिन जब भारत में विभिन्न उद्योग लगे तो फैक्ट्री मजदूर वर्ग का जन्म हुआ, जिनका जीवन स्तर काफी निम्न होता था और जिनका शोषण उद्योगपतियों के द्वारा किया जाता था ।

औद्योगीकरण ने स्लम पद्धति की शुरूआत की। मजदूर शहर में छोटे-छोटे घरों में, जहाँ किसी तरह की सुविधा उपलब्ध नहीं थी, रहने को वाध्य थे । आगे चलकर उत्पादन के उचित वितरण के लिए ये अंदोलन शुरू किए । चूँकि पूँजीपतियों द्वारा उनका बुरी तरह शोषण किया जाता था, इसलिए उन्होंने अपना संगठन बनाकर पूँजीपतियों के खिलाफ वर्ग संघर्ष की शुरूआत की ।

मजदूरों की आजीविका

औद्योगीकरण ने नई फैक्ट्री प्रणाली को जन्म दिया, जिससे गृह उद्योगों के मालिक अब मजदूर बन गए, जिनकी आजीविका बड़े-बड़े उद्योगपतियों द्वारा प्राप्त वेतन पर निर्भर करता था। औरतों एवं बच्चों से भी 16 से 18 घंटे काम लिए जाते थे । उस समय इंगलैड में कानून मिल मालिकों के पक्ष में थे । मजदूरों की लाचारी यह थी कि वे अपने गृह उद्योग की तरफ लौट नहीं सकते थे, क्योंकि कल पूर्जो एवं मशीनों के आगे साधारण गृह उद्योग का फिर से विकसित होना असम्भव था । अत: इन मजदूरों के मन में उत्तरोत्तर यह भावना दृढ़ होती गयी कि ये नये कारखाने उनके प्रबल शत्रु हैं । चूँकि इन्हीं कारखानों ने उन्हें बेरोजगार कर दिया था । जिन कारीगरों को नौकरी फैक्ट्रियों में मिल भी गयी उनका जीवन कष्टमय ही था । अत: इन मजदूरों एवं बेरोजगार कारीगरों ने झूण्ड बनाकर घूमना शुरू किया और मशीनों को तोड़ने लग गए। यूरोप में ऊन कातने वाली महिलाओं ने भी मशीनों पर प्रहार किया । कई जगहों पर मशीनों को चौराहे पर लाकर उनमें आग भी लगा दी गई।



बेघर मजदूरों की स्थिति

औद्योगीकरण ने मजदूरों की आजीविका को इस तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था कि उनके पास दैनिक उपभोग के पदार्थों को खरीदने के लिए धन नहीं रहा। अत: मजदूरों ने आंदोलन का रूख लिया। सन् 1830 से 1848 के मध्य मजदूरों ने संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए लंदन में आंदोलन किया। यद्यपि 1832 ई० में 'सुधार अधिनियम' पारित हुआ, लेकिन श्रमिकों को इससे कोई लाभ नहीं हुआ, यहाँ तक कि उन्हें मतदान का भी अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। अत: लंदन श्रमिक संघ (London Working Men's Association) के नेतृत्व में सन् 1838 में मजदूरों ने 'चार्टिस्ट आंदोलन' की शुरूआत की। इस आंदोलन को मजदूरों का पहला संगठित आंदोलन कहा जा सकता है। उस काल में, यद्यपि, इस आंदोलन को सफलता नहीं मिली, परन्तु आगे चलकर इसे इतनी अधिक लोकप्रियता हासिल हुई कि स्वयं संसद के सदस्यों को मजदूरों की मांगों की पूर्ति के लिए प्रयास करने पड़े। सन् 1918 में इंगलैंड के सभी स्त्री-पुरूष, जो वयस्क थे, को मताधिकार प्रदान किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वहाँ मजदूर दल की सरकार बनी, जिसने उनके हितों की रक्षा करनी शुरू कर दी।

भारत में 1850 ई० के बाद का काल भारतीय श्रमिक वर्ग का आरम्भिक काल था। भारत में उद्योगों की स्थापना से मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई। आगे चलकर भारतीय श्रमिक वर्ग को कम मजदूरी, लंबे कार्य के घंटे, मिलों में अस्वस्थ वातावरण, बच्चों से काम लेना तथा महिलाओं को न्यूनतम मजदूरी नहीं देना साथ ही सामान्य सुविधाओं को भी उपलब्ध नहीं कराने की समस्या को झेलना पड़ता था। इसके अतिरिक्त शासन के उत्पीड़न से भी भारतीय मजदूरों को क्षोभ उत्पन्न होने लगा था। अत: उन्होंने मिल मालिकों एवं औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ आन्दोलन की योजना बनानी शुरू कर दी। इस कार्य में लंकाशायर के कपड़ा मिल के मालिकों ने भारतीय मजदूरों का साथ दिया और उनकी स्थिति में सुधार की मांग ब्रिटिश सरकार से की। चूँकि उन्हें डर था कि सस्ती मजदूरी होने के कारण भारत का उद्योग उनका प्रतिद्वन्दी न बन जाये। सन् 1875 में उनकी मांगों के आधार पर एक आयोग नियुक्त हुआ, जिसके प्रतिवेदन के आधार पर सन् 1881 में पहला 'फैक्ट्री एक्ट' पारित



कताई करती महिला का चित्र

हुआ। इसके द्वारा 7 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखाने में कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया, 12 वर्ष कम आयु के बच्चों के काम का घंटा तय किया गया तथा महिलाओं के भी काम के घंटे तथा मजदूरी को निश्चित किया गया।

फिर भी मजदूरों का असंतोष तब दिखाई पड़ा जब 1882 और 1890 के बीच मद्रास और बंबई प्रेसिडेंसियों में 25 हड़तालें दर्ज की गयीं। ये मजदूर असंगठित थे, जो गाँव से आये थे और कुछ समय तक उद्योग में लगकर अपनी स्थिति में सुधार लाना चाहते थे। सुधार नहीं आने की स्थिति में ये कारखाना छोड़कर वापिस लौट जाते थे।

धीरे -धीरे ये असंगठित मजदूर राष्ट्रीय स्तर पर अपना संगठन बनाना शुरू कर दिए। 31 अक्टूबर 1920 ई० को 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' (AITUC) की स्थापना की गयी और लाला लाजपत राय उसके प्रधान बनाये गये। सन् 1920 में ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ (ILO) के गठन से श्रमिकों की समस्याओं को अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका मिल गयी।

सन् 1926 में 'मजदूर संघ अधिनियम' (Trade Union Act) पारित हुआ, जिसके द्वारा पंजीकृत मजदूर संघों को मान्यता प्रदान की गयी। सन् 1929 के घोर मंदी में हड़तालों द्वारा न तो मजदूरी को ही गिरने से रोका जा सका और न ही श्रमिकों को छंटनी से रोका जा सका। इस काल में मजदूर संघों में फूट पड़ गयी। इसी समय भारत में राष्ट्रीय आंदोलन जोरों पर था। साम्यवाद की लहर रूस से भारत की तरफ आ गयी थी और राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी भी सक्रिय भूमिका की शुरूआत हो गयी थी। मजदूर वर्ग के लोग उनके साथ राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गये, क्योंकि साम्यवादी मजदूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक भूमिका पर बल देते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान बम्बई, कानपुर, कलकत्ता, डिगबोई, झरिया, जमशेदपुर और धनबाद में मजदूरों ने मंहगाई भत्ते को लेकर हड़ताल किया। सन् 1942 में 'भारत छोड़ो आंदोलन' में इन मजदूरों ने अपने मिल मालिकों के खिलाफ आंदोलन करते हुए औपनिवेशिक शासन का विरोध किया। इससे राष्ट्रीय आंदोलन को बल मिला। लगभग सभी जगहों के मजदूर दलों ने औद्योगिक क्षेत्रों में मजदूरों की आर्थिक मांगों को उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के साथ जोड़ने की कोशीश की ।

स्वंतत्रता प्राप्ति के साथ भारत का विभाजन हो गया और इसके तुरत बाद भारत में बेरोजगारी बढ़ गयी । श्रमिकों को यह उम्मीद थी कि स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद उनकी आर्थिक

स्थिति अच्छी हो जायेगी, परन्तु ऐसा नहीं हो सका और मजदूर संगठन तीन भागों में बट गया । इंडियन नेशनल ट्रेड युनियन कांग्रेस (INTUC), हिन्द मजदूर संघ (H.M.S.) और युनाइटेड ट्रेड युनियन कांग्रेस (UTUC.)

मजदूरों की आजीविका एवं उनके अधिकारों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने सन् 1948 ई० में न्युनतम मजदूरी कानून (Minimum Wages Act) पारित किया, जिसके द्वारा कुछ उद्योगों में मजदूरी की दरें निश्चित की गई । प्रथम पंचवर्षीय योजना में इसे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा दूसरी योजना में तो यहाँ तक कहा गया कि न्युनतम मजदूरी उनकी ऐसी होनी चाहिए जिससे मजदूर केवल अपना ही गुजारा न कर सके, बल्कि इससे कुछ और अधिक हो, ताकि वह अपनी कुशलता को भी बनाये रख सके । तीसरी योजना में मजदूरी बोर्ड स्थापित किया गया और बोनस देने के लिए बोनस आयोग की भी नियुक्ति हुई ।

मजदूरों की स्थिति में सुधार हेतु सन् 1962 में केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय श्रम आयोग स्थापित किया । इसके द्वारा मजदूरों को रोजगार उपलब्ध कराया गया तथा उनकी मजदूरी को सुध ारने का प्रयास किया गया ।

इस तरह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने उद्योग में लगे मजदूरों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कई कदम उठाये हैं, चूकि औद्योगीकरण के दौर में पूँजीपतियों द्वारा उनका शोषण किया जाता था ।

कुटीर उद्योग का महत्व एवं उसकी उपयोगिता

यद्धपि औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने भारत के कुटीर उद्योग को काफी क्षति पहुँचाई, मजदूरों की आजीविका को प्रभावित किया, परन्तु इस विषम एवं विपरित परिस्थिति में भी गाँवों एवं कस्बों में यह उद्योग पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा तथा जन साधारण को लाभ पहुँचाता रहा । राष्ट्रीय आन्दोलन, विशेषकर स्वदेशी आन्दोलन के समय इस उद्योग की अग्रणी भूमिका रही । अत: इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता । महात्मा गाँधी ने कहा था कि लघु एवं कुटीर उद्योग भारतीय सामाजिक दशा के अनुकूल हैं । ये राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाहित करते हैं । कुटीर उद्योग उपभोक्ता वस्तुओं, अत्यधिक संख्या को रोजगार तथा राष्ट्रीय आय का अत्यधिक समान वितरण सुनिश्चित करते हैं । तीव्र औद्योगीकरण के प्रक्रिया में लघु उद्योगों ने

सिद्ध किया कि वे बहुत तरीके से फायदेमन्द होते हैं । सामाजिक, आर्थिक व तत्सम्बन्धी मुद्धों का समाधान इन्हीं उद्योगों से होता है । इसके ठीक से कार्यकरण पर तीव्र आर्थिक विकास निर्भर करता है । यह समाजिक, आर्थिक प्रगति व संतुलित क्षेत्रवार विकास के लिए एक शक्तिशाली औजार है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन उद्योगों की प्रगति बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर को बढ़ाती है, कौशल में वृद्धि, उद्यमिता में वृद्धि तथा उपयुक्त तकनीक का बेहतर प्रयोग सुनिश्चत करती है । इसको प्रारम्भ करने में बहुत ही कम पूँजी की आवश्यकता होती है। ये उत्पादकीय क्षमता के फैलाव पर ध्यान देते है, जबकि औद्योगीकरण में उत्पादन शक्ति केवल कुछ हाथों में रहती है । कुटीर उद्योग जनसंख्या के बड़े शहरों में प्रवाह को रोकता है ।

आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के विकास के पूर्व भारतीय निर्मित वस्तुओं का विश्व व्यापी बाजार था । भारतीय मलमल और छींट तथा सूती वस्त्रों की मांग पूरे विश्व में होती थी । भारतीय उद्योग न केवल स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माल उपलब्ध कराते थे, बल्कि वे निर्मित वस्तुओं का निर्यात भी करते थे । भारत से निर्यात के मुख्य वस्तुओं में रूई तथा सिल्क, छींट, रगारंग के वर्त्तन तथा ऊनी कपड़े शामिल हैं ।

ब्रिटेन में उच्च वर्ग के लोग भारत में हाथों से बनी हुई वस्तुओं को ज्यादा तरजीह देते थे । हाथों से बने महीन धागों के कपड़े, तसर सिल्क, बनारसी तथा बालुचेरी साड़ियाँ तथा बुने हुए बॉडर वाली साड़ियाँ एवं मद्रास की प्रसिद्ध लुंगियों की मांग ब्रिटेन के उच्च वर्गों में अधिक थी । मशीनों द्वारा इसकी नकल नहीं की जा सकती थी और विशेष बात तो यह थी कि इस पर अकाल और बेरोजगारी का भी असर नहीं होता था क्योंकि यह महंगी होती थी और सिर्फ उच्च वर्ग के द्वारा विदेशों में उपयोग में लायी जाती थीं ।

अंग्रेजों के साथ राजनैतिक सम्बन्ध कायम होने, और औद्यौगीकरण के कारण भारत का कुटीर उद्योग एवं हस्त शिल्प उद्योग का पतन हुआ । चूकि ब्रिटिश सरकार की नीति भारत में विदेशी निर्मित वस्तुओं का आयात एवं भारत के कच्चा माल के निर्यात को प्रोत्साहन देना था, इसलिए ग्रामीण उद्योग पर कोई ध्यान नहीं दिया गया । फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलन, विशेषकर स्वदेशी आन्दोलन के समय खादी वस्त्रों की मांग ने कुटीर उद्योग को बढ़ावा दिया । दो विश्वयुद्धों के बीच कुटीर उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई और कारखानों के साथ कुटीर उद्योग भी क्षेत्रीय जगहों पर उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे ।

सन् 1947 ई० में स्वंतत्रता प्राप्ति के बाद कुटीर उद्योग की उपयोगिता और उसके विकास हेतु भारत सरकार की नीतियों में परिवर्त्तन हुआ । 6 अप्रैल 1948 की औद्योगिक नीति के द्वारा लघु एवं कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन दिया गया । सन् 1952–53 ई० में पाँच बोर्ड बनाये गए, जो हथकरघा, सिल्क, खादी, नारियल की जटा तथा ग्रामीण उद्योग हेतु थे । सन् 1956 एवं 1977 ई० के औद्योगिक नीति में इनके प्रोत्साहन की बात कही गई । आगे चलकर 23 जुलाई 1980 को औद्योगिक नीति घोषणापत्र जारी किया गया, जिसमें कृषि आधारित उद्योगों की बात कही गयी एवं लघु उद्योगों की सीमा भी बढ़ायी गई ।

इस तरह हम देखते हैं कि स्वंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने जहाँ एक तरफ कुटीर उद्योग को बढ़ावा दिया वहीं दूसरी तरफ औद्योगीकरण की प्रक्रिया भी आगे बढ़ने लगी। अब रसायन एवं बिजली जैसे औद्योगिक क्षेत्रों का विस्तार होने लगा तथा विद्युत इलेक्ट्रोनिक एवं स्वचालित मशीनों का प्रयोग किया जाने लगा । उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन की औद्योगिक नीति ने जिस तरह औपनिवेशिक शोषण की शुरूआत की, भारत में राष्ट्रवाद की नींव उसका प्रतिफल था। यही कारण था कि जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन की शुरूआत की तो राष्ट्रवादियों के साथ अहमदाबाद एवं खेड़ा मिल के मजदूरों ने उनका साथ दिया । महात्मा गाँधी ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर बल डालते हुए कुटीर उद्योग को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया तथा उपनिवेशवाद के खिलाफ उसका प्रयोग किया । पूरे भारत के मिलों में काम करने वाले मजदूरों ने भारत छोड़ों आन्दोलन में उनका साथ दिया । अत: औद्योगीकरण ने, जिसकी शुरूआत एक आर्थिक प्रक्रिया के तहत हुई थी, भारत में राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्त्तन का मार्ग प्रशस्त किया । सन् 1950 के बाद सम्पूर्ण विश्व में अग्रणी औद्योगिक शक्ति समझा जाने वाला ब्रिटेन अपने प्रथम स्थान से वंचित हो गया और अमेरिका एवं जर्मनी जैसे देश औद्योगिक विकास की दृष्टि से ब्रिटेन से काफी आगे निकल गए ।

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objcetive Questions)

1. स्पिनिंग जेनी का आविष्कार कब हुआ ?

   (क) 1769 (ख) 1770

   (ग) 1773 (घ) 1775

2. सेफ्टी लैम्प का आविष्कार किसने किया ?

   (क) जेम्स हारग्रीब्ज (ख) जॉन के

   (ग) क्राम्पटन (घ) हम्फ्री डेवी

3. बम्बई में सर्वप्रथम सूती कपड़ों के मिलों की स्थापना कब हुई ?

   (क) 1851 (ख) 1885

   (ग) 1907 (घ) 1914

4. 1917 ई० में भारत में पहली जूट मिल किस शहर में स्थापित हुआ ?

   (क) कलकत्ता (ख) दिल्ली

   (ग) बम्बई (घ) पटना

5. भारत में कोयला उद्योग का प्रारम्भ कब हुआ ?

   (क) 1907 (ख) 1914

   (ग) 1916 (घ) 1919

6. जमशेद जी टाटा ने टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना कब की ?

   (क) 1854 (ख) 1907

   (ग) 1915 (घ) 1923

7. भारत में टाटा हाइड्रो-इलेक्ट्रीक पावर स्टेशन की स्थापना कब हुई ?

(क) 1910 (ख) 1951

(ग) 1955 (घ) 1962

8. इंगलैंड में सभी स्त्री एवं पुरूषों को व्यस्क मताधिकार कब प्राप्त हुआ ?

(क) 1838 (ख) 1881

(ग) 1918 (घ) 1932

9. 'अखिल भारतीय ट्रेड युनियन कांग्रेस' की स्थापना कब हुई ?

(क) 1848 (ख) 1881

(ग) 1885 (घ) 1920

10. भारत के लिए पहला फैक्ट्री एक्ट कब पारित हुआ ?

(क) 1838 (ख) 1858

(ग) 1881 (घ) 1911

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें ।

1. सन् 1838 ई० में .... में चार्टिस्ट आन्दोलन की शुरूआत हुई ।
2. सन् .... में मजदूर संघ अधिनियम पारित हुआ ।
3. 'न्युनतम मजदूरी कानून सन् .... ई० में हुई ।
4. अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ की स्थापना .... ई० में हुई ।
5. प्रथम फैक्ट्री एक्ट में महिलाओं एवं बच्चों की .... एवं .... को निश्चित किया गया ।

सुमेलित करें –

(क)	स्पिनिंग जेनी	(क)	सैम्यूल क्राम्पटन
(ख)	फ्लांइग शट्ल	(ख)	एडमण्ड कार्टराईट
(ग)	पावर लुम	(ग)	जेम्स वॉट
(घ)	वाष्प इंजन	(घ)	जॉन के
(ड.)	स्पिनिंग म्यूल	(ड.)	जेम्स हारग्रीब्ज

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (20 शब्दों में उत्तर दें)

1. फैक्ट्री प्रणाली के विकास के किन्ही दो करणों को बतायें ।
2. बुर्जुआ वर्ग की उत्पति कैसे हुई ?
3. अठारवीं शताब्दी में भारत के मुख्य उद्योग कौन-कौन से थे ?
4. निरूद्योगीकरण से आपका क्या ताप्पर्य है ?
5. औद्योगिक आयोग की नियुक्ति कब हुई ? इसके क्या उद्वेश्य थे ?

लघु उत्तरीय प्रश्न (60 शब्दों में उत्तर दें)

1. औद्योगीकरण से आप क्या समझते हैं ?
2. औद्योगीकरण ने मजदूरों की आजीविका को किस तरह प्रभावित किया ?
3. स्लम पद्धति की शुरूआत कैसे हुई ?
4. नयुनतम मजदूरी कानून कब पारित हुआ और इसके क्या उद्वेश्य थे?
5. कोयला एवं लौह उद्योग ने औद्योगीकरण को गति प्रदान की, कैसे ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (150 शब्दों में उत्तर दें)

1. औद्योगीकरण के कारणों का उल्लेख करें ।
2. औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्त्तनों पर प्रकाश डालें ।

3. उपनिवेशवाद से आप क्या समझते हैं ? औद्योगीकरण ने उपनिवेशवाद को जन्म दिया कैसे ?

4. कुटीर उद्योग के महत्व एवं उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालें ।

5. औद्योगीकरण ने सिर्फ आर्थिक ढाँचे को ही प्रभावित नहीं किया बल्कि राजनैतिक परिवर्त्तन का भी मार्ग प्रशस्त किया, कैसे ?

वर्ग परिचर्चा

1. अपने आस पास के किसी कुटीर उद्योग वाले क्षेत्र का पता लगायें। यह उद्योग किस वस्तु के उत्पादन से सम्बंधित है । इसमें कितने मजदूर काम करते हैं तथा मजदूरों की स्थिति कैसी है?-इसका विवरण तैयार कर वर्ग में शिक्षक के साथ इस पर परिचर्चा करें ।

इकाई ६

शहरीकरण एवं शहरी जीवन

शहरीकरण का अर्थ है किसी गॉव का शहर या कस्बे के रूप में विकसित होने की प्रक्रिया। गॉव और शहर के बीच काफी भिन्नताएॅ हैं । गॉव की आबदी कम होती है नगर की ज्यादा; गॉव में खेती और पशुपालन मुख्य आजीविका है, शहर में व्यापार और उत्पादन, गॉव में प्राकृतिक वातावरण स्वच्छ है, शहर में प्रदूषित । शिक्षा, यातायात, स्वास्थ्य सुविधाएॅ आदि में शहर अधिक उन्नत अवस्था में होती है। गॉव से शहरों का विकास एक वृहत प्रक्रिया है जो कई शताब्दियों पर फैली है । समाजशास्त्री के अनुसार नगरीय जीवन तथा आधुनिकता एक-दूसरे के पूरक है और शहर को आधुनिक व्यक्ति का प्रभाव क्षेत्र माना जाता है । शहर व्यक्ति को सन्तुष्ट करने के लिए अंतहीन संभावनाएॅ प्रदान करता है । आधुनिक काल से पूर्व व्यापार एवं धर्म शहरों की स्थापना के महत्वपूर्ण आधार थे। ऐसे वे क्षेत्र थे जो मुख्य व्यापार मार्ग अथवा पत्तन और बन्दरगाहों के किनारे बसे थे । कुछ ऐसे क्षेत्र थे जो धार्मिक स्थल के रूप में भारी संख्या में भक्तों को आकर्षित करते थे तथा ये धार्मिक स्थल नगर अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ भी करते थे ।

मध्यकालीन सामंती सामाजिक संरचना एवं मध्यकालीन जीवन मूल्य तेरहवीं शताब्दी तक अपने शिखर पर थे । कई प्रतिरोध के पश्चात् भी यह व्यवस्था लगभग सोलहवीं शताब्दी तक बनी रही । इस व्यवस्था ने नई एवं बाह्य शक्तियों को जो इसे परिवर्तित करना चाहती थी यथासंभव नियंत्रित रखा, रोका और अपने में समाहित किया । अंततः एक नई सामाजिक एवं राजनीतिक संरचना विकसित हुई, जो अपनी परम्पराओं एवं स्वरूप के लिए प्राचीन परिपाटी के प्रति ऋणी तो थी किन्तु नवीन राजनीतिक एवं आर्थिक अवधारणाओं को स्वीकार करती थी जो अधिक लौकिक थी एवं जिज्ञासु प्रवृति से प्रेरित थी ।

इसी पृष्ठभूमि में शहरी जीवन का पुनः उदय हुआ । कालांतर में ऐसे शहरों का विस्तार हुआ जिसमें भव्य परकोटों का निर्माण हुआ। ये शहर तथा इनके व्यस्त उद्यमी नागरिक भविष्य

के दृष्टिगोचर एवं अग्रदूत थे । ये शहर नये राजमार्गों से जोड़े गये तथा इनके बीच सड़क एवं जलमार्गों द्वारा व्यापार होने लगा ।

शहरीकरण की प्रक्रिया बहुत लम्बी रही है लेकिन आधुनिक शहर के उदय का इतिहास लगभग दो सौ वर्ष पुराना है । तीन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं ने आधुनिक शहरों की स्थापना में निर्णायक भूमिका निभाई । पहला, औद्योगिक पूंजीवाद का उदय, दूसरे, विश्व के विशाल भूभाग पर औपनिवेशिक शासन की स्थापना और तीसरा लोकतांत्रिक आदर्शों का विकास।

इस तरह ग्रामीण एवं सामंती व्यवस्था से हटकर एक प्रगतिशील शहरी व्यवस्था की ओर बढ़ने की प्रवृति बढ़ी । अत: नगरवाद, जनसमूह के एक बड़े भाग की जीवन पद्धति के रूप में आधुनिक घटना है ।

एक स्थायी सामाजिक जीवन की शुरुआत गॉव से हुई । इस संक्रमण की प्रक्रिया में जहॉ खानाबदोशी जीवन की पद्धति थी, जिसकी विशेषता शिकार, भोजन संकलन तथा अस्थायी कृषि पर आधारित थी, उसके स्थान पर स्थानीय कृषि को प्रारंभ किया गया ।

भूमि निवेश तथा तकनीकी खोजों ने कृषि में अतिरिक्त उत्पादन की संभावना को जन्म दिया जो उसके सामाजिक अस्तित्व के लिए अपरिहार्य है । अत: स्थायी कृषि के प्रभाव से संपत्ति का जमाव संभव हुआ जिसके कारण सामाजिक विषमताएँ भी आई । अत्यधिक उच्चश्रम विभाजन ने व्यावसायिक विशिष्टता की आवश्यकता को जन्म दिया । इन परिवर्तनों के आधार पर ग्रामीण जीवन के उद्‌भव को एक आधार मिला जहॉ लोगों का निवास एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक संगठन पर आधारित था ।

आर्थिक तथा प्रशासनिक संदर्भ में ग्रामीण तथा नगरीय व्यवस्था के दो मुख्य आधार हैं। जनसंख्या का घनत्व तथा कृषि आधारित आर्थिक क्रियाओं का अनुपात । अत: शहरों तथा नगरों में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है । अथवा प्रति इकाई क्षेत्र में लोगों की संख्या की दृष्टि से वे छोटे होते हैं । शहरों तथा नगरों से गॉव को उनके आर्थिक प्रारूप में कृषिजन्य क्रियाकलापों में एक बड़े भाग के आधार पर भी अलग किया जाता है । दूसरे शब्दों में गॉवों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा कृषि संबंधी व्यवसाय से जुड़ा है । अधिकांश वस्तुएँ कृषि उत्पाद ही होती है जो इनकी आय का प्रमुख स्रोत होता है । अत: एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था मूलत: जीवन निर्वाह अर्थव्यवस्था की अवधारणा पर आधारित थी । ऐसे वर्ग का नगरों की ओर बढ़ना एक गतिशील मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था के आधार पर संभव हुआ जो प्रतियोगी था एवं एक उद्यमी प्रवृति से प्रेरित

था । इसी सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के आधार पर प्रवजन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई । भारी संख्या में कृषक वर्ग ग्रामीण क्षेत्रों से निकल कर शहरों की ओर नए अवसर की तलाश में बढ़े । प्रारम्भ में शहरों के बसने में इनका अभिन्न योगदान रहा । परन्तु शहरी व्यवस्था के अन्तर्गत यह तब भी उपेक्षित वर्ग रहे जिसने सामाजिक भेदभाव की भावना को बनाये रखा । इस दिशा में बढ़ते हुए आधुनिक शहरों का विकास हुआ जिसमें शहरी जीवन की ओर रुझान बढ़ा । यह ऐसी प्रक्रिया है जहाॅ क्रमश: नगरीय जनसंख्या का बड़े से बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरों में बसने लगा। शहरों के आकार और जटिलता में भी अन्तर उत्पन्न हुआ । राजनीतिक प्राधिकार का केन्द्र प्राय: शहर बन गये जहाॅ दस्तकार, व्यापारी और अधिकारी बसने लगे ।

आधुनिक काल में औद्योगीकरण ने शहरीकरण के स्वरूप को गहन रूप से प्रभावित किया। औद्योगिक क्रांति की शुरुआत होने के कई दशक बाद तक भी अधिकतर पशि्चिमी शहर मोटे तौर पर ग्रामीण किस्म के शहर ही थे ।

शहरों के विकासक्रम की ओर दृष्टि डाली जाये तब उनके विकास की प्रक्रिया को कस्बों के रूप में प्रारंभ होते हुए देखा जा सकता है । जहाॅ कस्बों में शिल्पकार, व्यापारी, प्रशासन तथा शासक रहते थे । कस्बों का ग्रामीण जीवन पर प्रभाव था जिसे यह करो और अधिशेष के प्राप्ति के आधार पर स्वयं को मजबूत करते थे । अधिकांशत: कस्बों और शहरों की किलाबंदी की जाती थी जो ग्रामीण क्षेत्रों से इनकी पृथकता को चिन्हित करती थी ।

कस्बा–ग्रामीण अंचल में एक छोटे नगर को माना जाता है जो अधिकांशत: स्थानीय विशिष्ट व्यक्ति का केन्द्र होता है ।

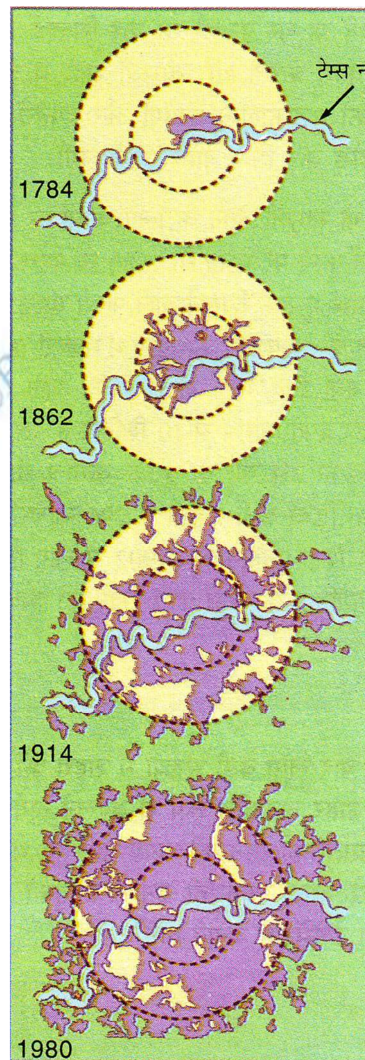
गंज–एक छोटे स्थायी बाजार को कहा जाता है । कस्बा और गंज दोनों कपड़ा, फल, सब्जी, तथा दूध उत्पादों से संबद्ध थे । विशिष्ट परिवारों तथा सेना के लिए सामग्री उपलब्ध कराते थे।

अठारहवीं शताब्दी में राजनीतिक तथा व्यापारिक पुनर्गठन के साथ पुराने नगर पतनोन्मुख हुए और नये नगरों का विकास होने लगा । शहर घनी आबादी वाले आधुनिक प्रकार के महानगर होने लगे जहाॅ एक पूरे क्षेत्र के राजनीतिक व आर्थिक कामों को देखा जाता है और उनकी आबादी बहुत बड़ी होती है ।

इंग्लैंड–औद्योगीकरण ने शहरीकरण के स्वरूप को गहन रूप से प्रभावित किया। फिर भी 1850 ई. तक अधिकांश पश्चिमी शहर लगभग ग्रामीण किस्म के शहर ही थे । लीड्स और

मैनचेस्टर जैसे प्रारंभिक औद्योगिक शहर अठारहवीं शताब्दी के अंत में स्थापित किये गये। कपड़ा मिलों के कारण प्रवासी मजदूर शहरों की ओर भारी संख्या में आकर्षित हुए। 1851 में मैनचेस्टार में रहने वाले तीन चौथाई से अधिक लोग ग्रामीण इलाकों से आए प्रवासी मजदूर थे ।

1750 ई. तक इंग्लैंड और वेल्स का हर नौ में से एक आदमी लन्दन में रहता था। यह एक महाकाय शहर था जिसकी आबादी 6,75,000 तक थी । उन्नीसवीं शताब्दी में भी लंदन के विस्तार की प्रक्रिया जारी रही । 1810 से 1880 ई. तक उसकी आबादी की संख्या 10 लाख से बढ़कर 40 लाख यानि चार गुना हो चुकी थी । हालांकि लंदन में विशाल कारखाने नहीं थे फिर भी यह प्रवासियों को बड़ी संख्या में आकर्षित करने में सफल रहा । लंदन के पॉच प्रमुख उद्योगों में लंदन की गोदी के अलावा, (i) छपाई और स्टेशनरी उद्योग, (ii) परिधान और जूता उद्योग, (iii) धातु एवं इंजीनियरिंग उद्योग, (iv) लकड़ी व फर्नीचर उद्योग तथा (v) चिकित्सा उपकरण व घड़ी जैसे सटीक माप वाले उत्पादों और कीमती धातुओं की चीजें बनाने वाले उद्योग । बीसवीं शताब्दी में प्रथम विश्वयुद्ध के समय लंदन में मोटरकार और बिजली की उपकरणों का भी उत्पादन प्रारम्भ हुआ जिससे कि शहर की तीन चौथाई नौकरियॉ इन्हीं कारखानों में सीमित हो गई ।



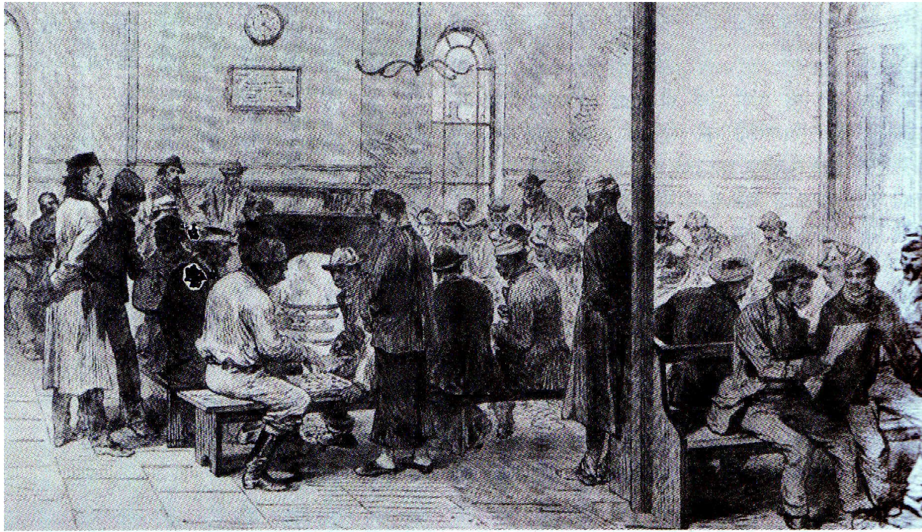
लंदन का फैलाव : चार अलग दौरों में लंदन की आबादी की दर्शाने वाला मानचित्र

महानगर—किसी प्रांत या देश का विशाल और घनी आबादी वाला शहर जो प्राय: वहॉ की राजधानी भी होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी का लंदन क्लर्कों और दुकानदारों, छोटे पेशेवरों और निपुण कारीगरों, कुशल व शारीरिक श्रम करनेवालों की बढ़ती आबादी, सिपाहियों, नौकरों, दिहाड़ी मजदूरों, फेरीवालों और भिखारियों का शहर था ।

शहरों की ओर बढ़ते रुझान ने लंदन जैसे पुराने शहर के स्वरूप को भी बदल दिया। चूँकि यह शहर प्रवासियों का शहर बनता जा रहा था अतः इस घनी आबादी वाले शहर में इन नवागंतुकों के लिए सस्ते और सामान्यतः असुरक्षित आवास बनने लगे चूंकि कारखाने के मालिक प्रवासी कामगारों को रहने की जगह मुहैय्या नहीं कराते थे । प्रवजन का यह एक प्रमुख परिणाम पाया गया ।

टेनेमेंट्स : कामचलाऊ और अक्सर बेहिसाब भीड़ वाले अपार्टमेंट मकान। ऐसे मकान बड़े शहरों के गरीब इलाके में अधिक पाए जाते थे ।

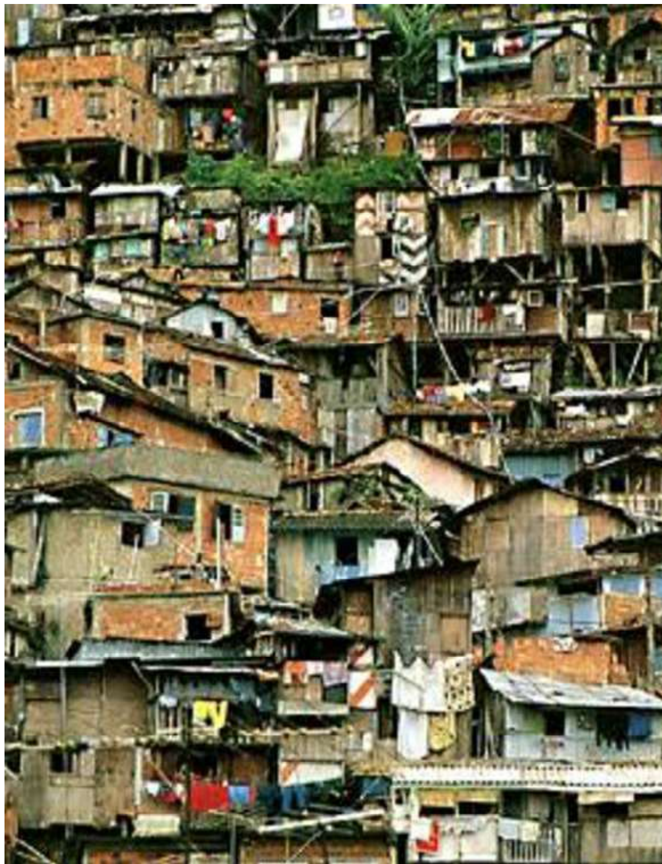


स्ट्रेंजर्स होम (अजनबियों का घर) दि-इलस्ट्रेटेड न्यूज-1870

बहुत सारे शहरों में खैराती संस्थाओं और स्थानीय शासन की ओर से जाड़ों में रैन बसेरे और अजनबी घरों की व्यवस्था की जाती थी । गरीब व्यक्ति भोजन, गर्माहट और आसरा की आशा में इन स्थानों पर बड़ी संख्या में एकत्रित होते थे ।

लंदन अगर एक ओर मनीषियों और धनी लोगों का शहर था तो दूसरा सत्य यह भी था कि ये अवसर केवल कुछ व्यक्तियों को ही प्राप्त थे जो सामाजिक तथा आर्थिक विशेषाधिकार प्राप्त अल्पसंख्यक वर्ग थे जो पूर्णरूपेण उन्मुक्त तथा सन्तुष्ट जीवन जी सकते थे। चूँकि अधिकतर व्यक्ति जो शहरों में रहते थे, बाध्यताओं में ही सीमित थे तथा उन्हें सापेक्षिक स्वतंत्रता प्राप्त नही थी । अतः शहर का जीवन परस्पर विरोधी छवियों और अनुभवों को जन्म दे रहा था । अगर एक ओर संपन्नता थी तो दूसरी ओर गरीबी, एक तरफ बाह्य चमक दमक थी तो दूसरी ओर धूल और

अंधकार एक ओर अवसर थे तो दूसरी ओर निराशा थी । जैसे-जैसे लंदन विकसित हुआ वैसे ही कुछ नकारात्मक प्रवृत्तियों में भी वृद्धि हुई जैसे– जो अपराधों में वृद्धि हुई जिससे सामाजिक नैतिक मूल्यों का पतन हुआ । डेविड थॉम्सन के अनुसार इस औद्योगीकरण का सबसे बड़ा प्रभाव सामाजिक नैतिक मूल्यों में बदलाव लाया। 1870 ई. के दशक में लंदन में कम-से-कम बीस हजार अपराधी रहते थे । हेनरी मेह्यू के अनुसार एक ऐसी सूची बनी जहाँ लोग अपराधों से ही अपनी आजीविका चलाते थे। इसके अलावा 1861 की जनगणना ने घरेलू नौकरों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने की जानकारी प्रदान की जिनमें महिलाओं की संख्या अधिक थी । बाल मजदूरों की संख्या में भी वृद्धि हुई । 1870 में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा कानून और 1902 से लागू किए गए फैक्ट्री कानून के बाद बच्चों को औद्योगिक कामों से बाहर रखने की व्यवस्था कर दी गई ।



लंदन की एक झोपडपट्टी-1889 (बीसवीं शताब्दी के मजदूरों में आवासों का घनत्व एवं साफ सफाई कमी

शहरों में अगर एक ओर रोजगार था तो दूसरी ओर उसके सीमित रूप जहाँ अल्पकुशल मजदूरों को एक निर्धन वर्ग के रूप में उभरते हुए पाया गया जो झोपड़पट्टियों में गुजारा कर रहे थे । शहर के गरीबों के लिए आवास की सुविधा उपलब्ध कराने के उपाय किए जाने लगे। एक कमरे वाले मकानों को जनस्वास्थ्य के लिए खतरा माना गया चूँकि इनमें हवा निकासी का इन्तजाम नहीं था दूसरे इनमें आग लगने का खतरा बना रहता था और तीसरा इस विशाल जनसमूह के कारण सामाजिक उथल-पुथल की आशंका बनी रहती थी। इन आशंकाओं को दूर करने के उद्देश्य से मजदूरों के लिए आवासीय योजनाएँ शुरू की गई ।

लंदन की भीड़ भरी बस्तियों को कम करने, खुले स्थानों को हरा-भरा बनाने, आबादी कम करने और शहर को योजनानुसार बसाने की कोशिश की गई । लंदन का गिर्द हरित पट्टी विकसित करके देहात और शहर के दूरी को कम करने के उपाय किये गये। इस अवधारणा को वास्तुकार और योजनाकार एवेनेजर हावर्ड ने 'गार्डन सिटी' (बगीचों का शहर) का नाम दिया जिसमें साझा बाग-बगीचे लगाये गए पर ऐसे मकान केवल खाते पीते कामगार ही खरीद सकते थे ।

विश्वयुद्धों के दौरान (1919-39) मजदूर वर्ग के लिए आवास का इन्तजाम करने का उत्तरदायित्व ब्रिटिश राज्य ने लिया और स्थानीय शासन के द्वारा 10 लाख मकान बनाए गए जो छोटे परिवारों को ध्यान में रखकर निर्मित हुए । इस अवधि में शहर इतना फैल चुका था कि अब लोग पैदल अपने काम तक नहीं पहुँच सकते थे अत: शहर के आसपास यानि उपशहरी बस्तियों के अस्तित्व में आने से सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था अनिवार्य रूप से लगू की गई । देशिक जीवन क्षमता को आश्वस्त किया गया । संगठन एवं प्रबंधन द्वारा निवास तथा आवासीय पद्धति को विकसित किया गया, यातायात के साधन उपलब्ध कराये गए ताकि कर्मचारियों को बड़ी संख्या में कार्य स्थल तक पहुँचाया जा सके। जनस्वास्थ्य, स्वच्छता, जनसुरक्षा, पुलिस की आवश्यकता महसूस की गई ।

इस चित्र में न्यू अर्जविक, एक बगीचा उपशहर इसमें चारों तरफ से बंद हरे भरे स्थान के सहारे एक नया सामुदायिक जीवन विकसित हो रहा था जिसे रेमंड अनवित और वैरी पार्कर ने तैयार किया था ।



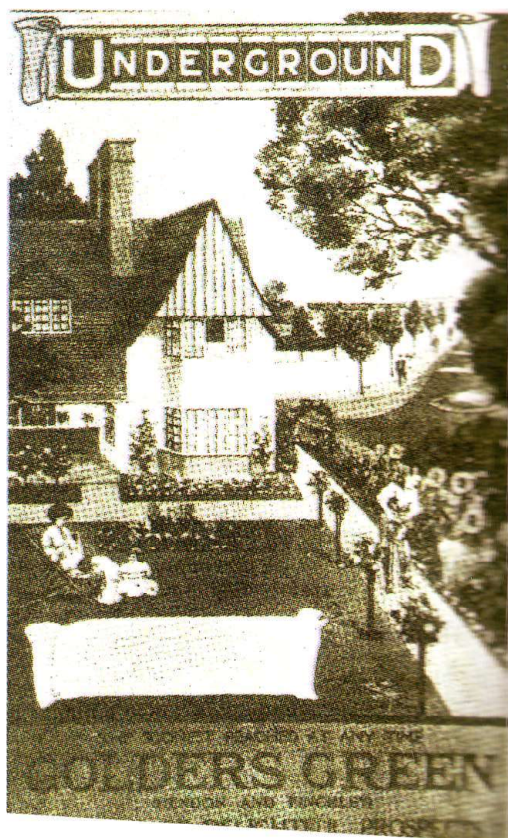
न्यू अर्जविक, एक बगीचा-उपशहर
ध्यान से दखिए कि इसमें चारों तरफ से बंद हरे-भरे स्थान के सहारे एक नया सामुदायिक जीवन विकसित हो रहा हे।

परिवहन व्यवस्था आवासीय क्षेत्रों के सापेक्ष औद्योगिक तथा वाणिज्यिक कार्यस्थलों से प्रभावित हुई जिससे वृहत् जन परिवहन प्रणाली का निर्माण हुआ । परिवहन व्यवस्था का नगर में काम करनेवालों की जीवन की गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ा । जन-परिवहन के साधनों में परिवर्तन से सामाजिक परिवर्तन भी आया । शहरों में आवागमन की सुविधा बढ़ी। लंदन के भूमिगत

रेलवे ने आवास की समस्या को भी हल किया जिसके जरिये लोग भारी संख्या में शहर के विभिन्न छोर तक पहुँच सकते थे ।

दुनिया की सबसे पहली भूमिगत रेल के पहले खंड का उद्घाटन 10 जनवरी 1863 ई० को किया गया । यह रेल लाईन लंदन की पैडिंग्ल और कैरिंग्टन स्ट्रीट के बीच स्थित थी। पहले दिन ही यात्रियों की संख्या 10,000 तक थी । 1880 ई. तक भूमिगत रेल नेटवर्क का विस्तार हो चुका था जिसमें सालान चार करोड़ लोग यात्रा करते थे ।

चार्ल्स डिकेन्स ने 1848 में लिखा कि भूमिगत रेल के कारण मकान गिराए गए सड़कें बंद हुई लंदन के गरीबों को बड़ी संख्या में उजाड़ा गया पर इन अड़चनों के बावजूद भूमिगत रेलवे सफल हुई । बीसवीं शताब्दी के आने तक न्यूयार्क, टोकियो और शिकागो जैसे विशाल महानगर ने अपनी एक सुव्यवस्थित सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था स्थापित की जिसे लेकर उपनगरीय क्षेत्रों को जोड़ा जा सका ।



गोल्डर्स ग्रीन स्टेशन के लिए लंदन अंडरग्राउंड का विज्ञापन, सन१९०० के आसपास

इस चित्र में श्वासावरोधन-गोल्डर्स ग्रीन स्टेशन के लिए लंदन अंडरग्राउंड का विज्ञापन सन् 1900 के आसपास-विज्ञापन में लोगों को हरे-भरे, कम भीड़ वाले सुन्दर उपशहरी इलाकों में बसने के लिए प्रेरित किया जा रहा है ।

जन परिवहन के साधनों में परिवर्तन से शहरों में सामाजिक परिवर्तन भी आए । समर्थ, कार्यकुशल तथा सुरक्षित जन-परिवहन शहरी जीवन में भारी परिवर्त्तन लाए तथा शहरों की आर्थिक स्थिति को भी प्रभावित किया जिससे सामाजिक व्यवस्था को भी एक नया आकार प्रदान किया गया।

सामाजिक बदलाव और शहरी जीवन :

शहरों का सामाजिक जीवन आधुनिकता के साथ अभिन्न रूप से जोड़ा जा सकता है। वास्तव में यह एक-दूसरे की अंर्तअभिव्यक्ति है । शहरों को आधुनिक व्यक्ति का प्रभाव क्षेत्र माना जाता है ।

सघन जनसंख्या के ये स्थल जहाॅ कुछ मनीषियों के लिए अवसर प्रदान कराता है वहीं यथार्थ में यह अवसर केवल कुछ व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है । परन्तु इन बाध्यताओं के बावजूद शहर 'समूह पहचान' के सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हैं जो कई कारणों से जैसे–प्रजाति धर्म, नृजातीय, जाति, प्रदेश तथा समूह शहरी जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। वास्तव में कम स्थान में अत्यधिक लोगों का जमाव, पहचान को और तीव्र करता है तथा उनमें एक ओर सहअस्तित्व की भावना उत्पन्न करता है तो दूसरी ओर प्रतिरोध का भाव। अगर एक ओर सह-अस्तित्व की भावना है तो दूसरी ओर पृथक्करण की प्रक्रिया जिसके परिणामस्वरूप मिश्रित प्रतिवेशी एकल समुदाय बदलने के उपाय में बदल गये । इस प्रकार मुहल्ले 'घेटो' कहलाये ।

> **व्यक्तिवाद**
>
> **वह सिद्धांत जिससे समुदाय की नहीं बल्कि व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकार को स्वीकार किया जाता है।–७**

> **घेटो**–सामान्यत: यह शब्द मध्य यूरोपीय शहरों में यहूदियों की बस्ती के लिए प्रयोग किया जाता है । आज के संदर्भ में यह विशिष्ट धर्म, नृजाति, जाति या समान पहचान वाले लोगों के साथ रहने को इंगित करता है । घैरोकरण की प्रक्रिया में मिश्रित विशेषताओं वाले पड़ोस के स्थान पर एक समुदाय पड़ोस में बदलाव का होना, सामुदायिक दंगों को ये एक विशिष्ट देशिक रूप देते हैं ।

शहरों में नए सामाजिक समूह बने । सभी वर्ग के लोग बड़े शहरों की ओर बढ़ने लगे। शहरी सभ्यता ने पुरुषों के साथ महिलाओं में भी व्यक्तिवाद की भावना को उत्पन्न किया एवं परिवार की उपादेयता और स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया । जहाॅ पारिवारिक सम्बन्ध अब तक बहुत मजबूत थे वहीं ये बंधन ढीले पड़ने लगे। एक ओर उनके अधिकारों के लिए आंदोलन चलाये गये । महिलाओं के मताधिकार आंदोलन या विवाहित महिलाओं के लिए संपत्ति में अधिकार आदि आंदलनों के माध्यम से महिलाएॅ लगभग 1870 ई. के बाद से राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा ले पाई । समाज में महिलाओं की स्थिति में भी परिवर्तन आए। उनके वैचारिक उद्भव को सांस्कृतिक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक काल में महिलाओं ने

समानता के लिए संघर्ष किया और समाज को कई रूपों में परिवर्तित करने में सहायता दी । ऐतिहासिक परिस्थितियॉ महिलाओं के संघर्ष के लिए कहीं सहायक सिद्ध हुई है तो कहीं बाधक। उदाहरण के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध के समय पाश्चात्य देशों में महिलाओं ने कारखानों में काम करना प्रारंभ किया। एक दूसरे प्रकार का उदाहरण, जहाँ महिलाएँ अपनी अस्मिता में परिवर्तन लाने में सफल हुई वह क्षेत्र था उपभोक्ता विज्ञापन। अधिकतर शहरी समाज में महिलाएॅ घरेलू उपयोग के वस्तुओं का निर्णय लेती है अतः विज्ञापनों ने उपभोक्ता के रूप में महिलाओं की सोच के प्रति संवेदनशील बनाया।

शहरों की बढ़ती आबादी के साथ उन्नीसवीं शताब्दी में अधिकतर आंदोलन जैसे चार्टिड़ग (सभी व्यस्क पुरुषों के लिए चलाया गया आंदोलन) दस घंटे का आंदोलन (कारखानों में काम के घंटे निश्चित करने के लिए चला आंदोलन) में पुरुष भी बड़ी संख्या में एकजुट हुए व्यवसायी वर्ग-नगरों के उद्‌भव का एक प्रमुख कारण व्यावसायिक पूँजीवाद के उदय के साथ संभव हुआ। व्यापक स्तर पर व्यवसाय, बड़े पैमाने पर उत्पादन, मुद्राप्रधान अर्थव्यवस्था, शहरी अर्थव्यवस्था जिसमें काम के बदले वेतन, मजदूरी का नगद भुगतान, एक गतिशील एवं प्रतियोगी अर्थव्यवस्था, स्वतंत्र उद्यम, मुनाफा कमाने की प्रवृत्ति, मुद्रा, बैंकिंग, साख बिल का विनिमय, बीमा, अनुबंध कम्पनी साझेदारी, ज्वाएंट स्टॉक, एकाधिकार आदि इस पूंजीवादी व्यवस्था की विशेषता रही। यह एक नए सामाजिक शक्ति के रूप में उभर कर आए ।

लैसेज फेयर : आर्थिक उन्मुक्तवाद था जिसमें सरकार का किसी रूप में हस्तक्षेप नहीं था एवं पूंजीपतियों को पूरी स्वतंत्रता थी ।

नये मिल मालिक वास्तव में पहले औद्योगिक पूंजीपति थे । इन्होंने सम्पदा, प्रतिष्ठा तथा प्रभाव स्वयं अपनी सूझबूझ, दूरदर्शिता एवं अध्यवसाय से अर्जित की थी । इस वर्ग का प्रभाव विशेषकर इंग्लैंड की राजनीति पर पड़ा ।

मध्यम वर्ग–शहरों के उद्‌भव ने मध्यमवर्ग को भी शक्तिशाली बनाया । एक नए शिक्षित वर्ग का अभ्युदय जहॉ विभिन्न पेशों में रहकर भी औसतन एक समान आय प्राप्त करनेवाले वर्ग के रूप में उभर कर आए एवं बुद्धिजीवी वर्ग के रूप में स्वीकार किए गए। यह विभिन्न रूप में कार्यरत रहे जैसे शिक्षक, वकील, चिकित्सक, इंजीनियर, क्लर्क, एकाउंटेंट्स परन्तु इनके जीवन मूल्य के आदर्श समान रहे और इनकी आर्थिक स्थिति भी एक वेतनभोगी वर्ग के रूप में उभर कर आई ।

श्रमिक वर्ग :

आधुनिक शहरों में जहॉ एक ओर पूँजीपति वर्ग का अभ्युदय हुआ तो दूसरी ओर श्रमिक वर्ग। सामंती व्यवस्था के अनुरूप विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के द्वारा सर्वहारा वर्ग का शोषण प्रारम्भ हुआ जिसके परिणामस्वरूप शहरों में दो परस्पर विरोधी वर्ग उभर कर आए। शहरों में फैक्टरी प्रणाली की स्थापना के कारण कृषक वर्ग, जो लगभग भूमि विहीन कृषि वर्ग के रूप में थे, शहरों की ओर बेहतर रोजगार के अवसर को देखते हुए भारी संख्या में शहरों की ओर इनका पलायन हुआ । इसी क्रम में नए औद्योगिक नगर जैसे मैनचेस्टर, लंकाशायर, शेकिन्ड आदि अस्तितव में आए । इन शहरों में श्रमिकों की संख्या अधिक थी। चूंकि लोक कल्याण के भावना की कमी थी अतः इन शहरों में नई समस्याओं को जन्म दिया जैसे बेरोजगारी में वृद्धि, स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों के प्रति उदासीनता, अतः श्रमिक वर्ग ने अपने हितों की सुरक्षा के लिए श्रमिक संघ कायम किए। बाद में संसद के द्वारा कुछ फैक्टरी नियम बनाए गए । इंग्लैंड में 1825 में सरकार को मजदूरों के वेतन बढ़ाने तथा काम के घंटे कम करवाने के लिए तथा संगठित ढंग से काम करने का अधि कार स्वीकार करना पड़ा। चूँकि इन नियमों का पालन नहीं हुआ अतः श्रमिकों की दशा में सुधार नहीं लाया जा सका जिसे लेकर मजदूर आंदोलन तीव्र हुआ और वे ट्रेड यूनियन बनाकर अपने को संगठित करने लगे।

औपनिवेशिक भारतीय शहर–बम्बई :

पश्चिमी यूरोपीय शहरों के विपरीत भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया धीमी रही। बीसवीं शताब्दी के शुरुआत में केवल 11 प्रतिशत लोग शहरों में रहते थे जिनमें एक बड़ी संख्या विशाल प्रेसीडेंसी शहरों में रहती थी, जो विशाल एवं बहुउपयोगी थे । इन शहरों में बड़े बन्दरगाह, वेयरहाउस, सेना की छावनियाँ, शैक्षणिक संस्थान, संग्रहालय व पुस्तकालय थे । बंबई भारत का एक प्रमुख शहर था । उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक बम्बई का विस्तार तीव्रता से हुआ । शुरुआत में बम्बई सात टापुओं का इलाका था । जैसे-जैसे आबादी बढ़ी, इन टापुओं को एक-दूसरे से जोड़ दिया गया ताकि ज्यादा जगह पैदा की जा सके। और इस तरह एक विशाल शहर अस्तित्व में आया। बम्बई औपनिवेशिक भारत की वाणिज्यिक राजधानी थी। एक प्रमुख बंदरगाह होने के नाते यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र था जहॉ से कपास और अफीम जैसे कच्चे माल बड़ी तादाद में रवाना किए जाते थे। इस व्यापार के कारण न सिर्फ व्यापारी और महाजन बल्कि कारीगर एवं

दुकानदार भी बम्बई में बसे। कपड़ा मिलें खुलने पर और अधिक संख्या में लोग इस शहर की ओर उन्मुख हुए। 1854 ई. में पहला कपड़ा मिल स्थापित हुआ और 1921 ई. तक वहाँ 85 कपड़ा मिलें खुल चुकी थी जिनमें लगभग 1,46,000 मजदूर काम कर रहे थे। 1931 तक लगभग एक चौथाई ही बम्बई के निवासी थे बाकी निवासी बाहर से आकर बसे थे।



१९३० में बम्बई का मानचित्र जसमें सात टापुओं और विकसित की गई जमीन को देखा जा सकता है।

लंदन की तरह बम्बई भी घनी आबादी वाला शहर है। 1840 में लंदन का क्षेत्रपुल प्रति व्यक्ति 155 वर्ग गज था जबकि बम्बई का प्रति व्यक्ति क्षेत्रफल केवल 9.5 वर्ग गज था। 1872 में लंदन में प्रति मकान में औसतन 8 व्यक्ति रहते थे जबकि बम्बई में प्रति मकान में 20 व्यक्ति रहते थे।

बम्बई का विकास सुनियोजित रूप से नहीं हो सका। बल्कि 1800 के आसपास बम्बई फोर्ट एरिया शहर का केन्द्र था और दो हिस्सों में बँटा हुआ था। एक हिस्से में 'नेटिव' रहते थे और दूसरे हिस्से में यूरोपीय या 'गोरे' रहते थे। कोर्ट आबादी के उत्तर में एक यूरोपीय उपनगर और औद्योगिक पट्‌टी भी विकसित होने लगी थी। दक्षिण में इसी तरह की उपनगरीय आबादी और एक छावनी थी। यह नस्ली विभाजन अन्य प्रसीडेंसी शहरों में भी रही।

शहर के अनियोजित विस्तार के कारण 1850 तक शहर में आवास और जलापूर्ति की समस्या बढ़ चुकी थी। कपड़ा मिलों के चलने से अधिक लोग बम्बई आकर बसने लगे जिससे बम्बई के आवासीय इलाकों पर दबाब बढ़ गया जिससे बम्बई की 70 प्रतिशत लोग घनी आबादी वाले चॉलों में रहते थे। बम्बई की चाल बहुमंजिला इमारत होती थी। लंदन केटिनेमेंट्स की तरह ये मकान भी मोटे तौर पर व्यापारी और महाजन की निजी संपत्ति होते थे। बाहर से आने वाले

लोगों की आवासीय जरूरत को पूरा करते थे परन्तु ये मात्र कमरों की कतारें होती थी जिनमें अलग शौचालय की व्यवस्था नहीं थी ।

लंदन में नगर योजना का काम सामाजिक क्रांति के भय से शुरू किया गया तो बम्बई में यह काम प्लेग की महामारी के डर से शुरू किया । 1898 में सिटी ऑफ बॉम्बे इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की स्थापना की गई । 1918 में बंबई के मकानों के महंगे किराये को सीमित करने के लिए किराया कानून पारित किया गया परन्तु इससे आवासीय समस्या समाप्त नहीं हुई। जमीन की कमी के कारण भी शहर के विस्तार से बम्बई में समस्या बढ़ी जिसे दूर करने के लिए भूमि विकास परियोजन लागू की गई । इस दिशा में सबसे पहली परियोजना 1784 में शुरू की गई थी । बम्बई के गवर्नर विलियम हॉर्नवी ने उस समय विशाल तटीय दीवार बनाने के प्रस्ताव पर मंजूरी दी ताकि शहर के निचले इलाके समुद्र के पानी की चपेट में आने से बच जाएँ ।



बीसवीं सदी की शुरूआत में कलाबादेवी रोड के पास बनाई गई चॉल

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए और अधिक जमीन की जरूरत महसूस हुई तो सरकार और निजी कम्पनियों के द्वारा नयी योजनाएँ बनाई गई। 1864 में मालाबार हिल से कोलबा के आखिरी छोर तक के पश्चिमी तट का विकसित करने का ठेका बैंक` बेरिक्लेमेशन कम्पनी को मिला । बीसवीं शताब्दी के आने तक जिस प्रकार आबादी तेजी से बढ़ी, अधिक से अधिक जमीन को घेर लिया गया और समुद्री जमीन को विकसित किया जाने लगा।

भूमि विकास

दलदली अथवा डूबी हुई जमीन कोरहने या खेती करने या किसी अन्य काम के योग्य बनाना

एक सफल भूमि विकास परियोजना बॉम्बे पोर्ट ट्रस्ट के अन्तर्गत शुरू की गई। ट्रस्ट ने 1914 से 1918 के बीच एक सूखी गोदी का निर्माण किया और उसकी खुदाई से जो मिट्टी निकली उसका इस्तेमाल करके 22 एकड़ का बालार्ड एस्टेट बना

डाला। इसके बाद मशहूर मरीन ड्राईव बनाया गया । बम्बई में आने वाले अप्रवासियों और उनके दैनिक जीवन में कठिनाई जिसका सामना आम आदमी को करना पड़ता है । निष्कर्षत: शहर के अन्तर्विरोध के बावजूद शहर ऐसे लोगों को हमेशा आकर्षित करती है जो स्वतंत्रता और नए अवसर की तलाश करते हैं जिससे इन शहरों को सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता मिलती है।



मारीन ड्राईव बंम्बई का यह प्रसिद्ध स्थान बीसवीं शताब्दी में समुद्र जमीन को विकसित करके बनाया गया।

सिंगापुर शहर का विकास :

एशियाई देशों के सभी शहर अनियोजित और बेतरतीब ढंग से विकसित नहीं हुए थे। कई शहर योजनाबद्ध रूप से तैयार की गई । ली कुआन येव का सिंगापुर एक प्रमुख उदाहरण है । आज का सिंगापुर एक सुनियोजित शहर है जो विश्व भर में नगर विकास के आदर्श को प्रस्तुत करता है । 1965 तक सिंगापुर एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह तो था लेकिन वह बाकी एशियाई शहरों जैसा ही था। इस शहर का निर्माण तो श्वेत बस्तियों के हिसाब से ही बसाया गया था। सिंगापुर पर उस समय श्वेतों का ही शासन था । शहर की ज्यादातर आबादी भीड़ भरी गंदे मकानों और गंदगी में जीते थे।

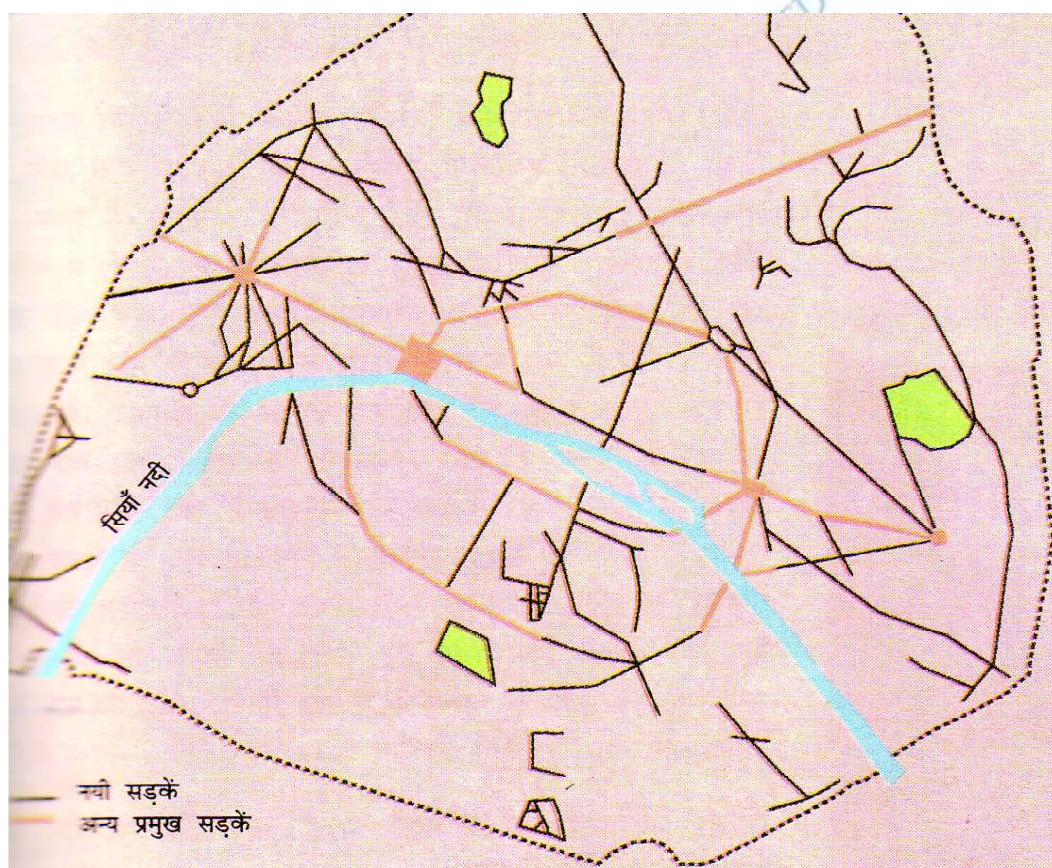
1965 में पीपुल्स एक्शन पार्टी के अध्यक्ष



सिंगापुर मरीन

ली कुआन येव के नेतृत्व में जब सिंगापुर को आजादी मिली तब एक विशाल आवास एवं विकास कार्यक्रम शुरू किया गया जिसने इस द्वीप राष्ट्र को एक नया आयाम दिया । सरकार के द्वारा लगभग 86 फीसदी जनता को अच्छे मकान दिए गए जिससे सरकार को इनका समर्थन प्राप्त हुआ । ऊंचे आवासीय खंडों में हवा निकासी और सभी प्रकार की सेवाओं का इंतजाम किया गया। इन इमारतों ने शहर के सामाजिक जीवन को भी बदल दिया । बाहरी गलियरों के कारण अपराध कम हुए, सामुदायिक कार्यक्रमों के लिए इन इमारतों में खाली मंजिलें छोड़ दी गई थीं ।

शहर में लोगों के आने पर नियंत्रण रखा जाने लगा । भारतीय, चीनी और मलय इन तीनों समुदायों के बीच नस्ली सामाजिक टकरावों को रोकने के लिए सामाजिक संबंधों पर भी लगातार



चित्र-११ : बैरॉन हॉसमान द्वारा १८५० से १८७० के बीच बनवाई गई पेरिस की प्रधान सड़कों की योजना

सचेत रहने के उपाय किए गए । अखबार, पत्रिका और अन्य प्रकार के संचार साधनों पर कड़ा नियंत्रण रखा गया ।

हालांकि सिंगापुर के नागरिकों को भौतिक सुविधाएँ और संपन्नता मिली लेकिन यह मान्यता भी है कि इस शहर में जीवंत और चुनौतीपूर्ण राजनीतिक संस्कृति की कमी है। जिस प्रकार से बेरॉन हॉसमान ने पेरिस के पुनर्निर्माण का काम किया । वह शहरीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। शहर भर में सीधी, चौड़ी सड़कें या बुलेवड्र्स (छायादार सड़क) बनाई गई, खुले मैदान बनाये गए और पेड़-पौधे, बागीचे लगाए गए, पूरे शहर में पुलिस को तैनात किया गया । 1860 तक पेरिस के प्रत्येक पॉच कामकाजी लोगों में से एक निर्माण कार्यों में लगाया गया । पर इस पुर्निर्माण अभियान में पेरिस के बीच रहने वाले 350,000 लोगों को उजाड़ दिया गया था। पेरिस के कुछ संपन्न निवासियों को भी लगता था कि उनके शहर को दानवी रूप से बदल दिया गया था । पर जल्द ही यह भावना गर्व में बदल गई जब पेरिस एक ऐसी राजधानी के रूप में जाना गया जो सिर्फ वास्तुशिल्प के लिए नहीं बल्कि सामाजिक और बौद्धिक प्रगति के केन्द्र के रूप में एक प्रभावशाली स्थान बना सका ।

पाटलीपुत्र (पटना) :

हमारे राज्य में पटना नगर का विकास शहरीकरण की इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्राचीनकाल में पाटलीपुत्र के नाम से विख्यात यह एक महानगर था जिसकी तुलना विश्व के समकालीन सुप्रसिद्ध नगरों से की जाती थी। इसकी स्थापना छठी शताब्दी ई०पू० में मगध के शासक अजातशत्रु के द्वारा एक सैनिक शिविर के रूप में की गई थी। कालान्तर में यह मगध साम्राज्य की राजधानी बना। मौर्य शासनकाल के कंधार से कर्नाटक तक विस्तृत साम्राज्य की राजधानी इसी पाटलीपुत्र नगर में स्थित थी। मौर्यकालीन राज-प्रसाद के अवशेष दक्षिण पटना में स्थित कुम्हरार से प्राप्त हुए हैं। इस नगर की आबादी उस समय लगभग 4 लाख थी। इस नगर के प्रशासन और जीवन के अनेक पहलुओं की विस्तृत चर्चा मेगास्थिनीज की रचना इन्डिका में उपलब्ध है। यह व्यक्ति चन्द्रगुप्त के दरबार में दूत के रूप में आया था।



गोलघर

गुप्त काल में भी इस नगर का गौरव बना रहा। इसके विशाल भवनों के वैभव और सौन्दर्य की चर्चा चीनी यात्री फा-हियान द्वारा की गई है। प्राचनी काल में यह नगर शिल्प कला, व्यापार, शिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था परन्तु यह नगर पूर्व मध्यकाल में पतनशील अवस्था में आ गया।



गंगा नदी किनारे बसा पटना शहर

मध्य युग में इस नगर के गौरव को सुप्रसिद्ध अफगान शासक शेरशाह सूरी ने पुनर्स्थापित किया। उसने 1541 ई० के लगभग गंगा और गंडक नदी के संगम के पास एक दुर्ग बनवाया क्योंकि इस स्थान के सैनिक महत्व का उसे आभास था। अब्दुल्लाह की रचना तारीखे दाऊदी में इस संबंध में विस्तृत जानकारी मिलती है। अकबर के शासन काल तक यह नगर एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन चुका था। 1856 ई० में अंग्रेज यात्री राल्फ फिच ने इस नगर का भ्रमण किया और बताया कि यहाँ से कपास, सूती वस्त्र, चीनी और अफीम का व्यापार बड़ी मात्रा में बंगाल एवं दूसरे क्षेत्रों के साथ होता था। इसके अतिरिक्त शोरा और नील का भी निर्यात अधिक मात्रा में पटना से होता था। यूरोपीय व्यापारियों के साथ पंजाब के खत्री और पश्चिमी भारत के जैन व्यापारी और ईरानी, मध्य एशियाई एवं आरमिनयाई व्यापारी भी इस नगर में सक्रिय थे। 17वीं एवं 18वीं शताब्दियों में इस नगर की आबादी 3 लाख से अधिक बताई जाती है जब कि समकालीन यूरोप में एक लाख की आबादी वाले नगर भी महत्वपूर्ण माने जाते थे। मुगल काल में अनेक सुन्दर और भव्य इमारतों का यहाँ निर्माण भी हुआ जिनमें अधिकतर अब नगर के मध्य एवं पूरबी भागों में देखी जा सकती है। इसी नगर में 1666 ई० में सिखो के दसवें और अन्तिम गुरू श्री गोविन्द सिंह जी का जन्म हुआ जिस कारण यह नगर एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल भी माना जाता है।

18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुगल राजकुमार अजीमुशान ने इस नगर का नव निर्माण कराया और इसे अजीमाबाद नाम दिया। उस समय इस नगर के पुनर्निर्माण पर लगभग एक करोड़ रूपयों का व्यय हुआ। तब यह नगर भारत के प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्रों में अग्रणीय था।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूरबी भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के साथ आधुनिक पटना नगर के विकास का क्रम आरम्भ हुआ। अजीमाबाद क्षेत्र से कुछ पश्चिम में अंग्रेजों का

अफीम गुदाम पहले ही से स्थित था। यहाँ से लगभग पांच मील की दूरी पर अनाज भण्डारण के लिए गुदाम का निर्माण 1786 ई० में किया गया जो आज गोलघर के नाम से विख्यात है। इन्हीं दोनों के बीच के क्षेत्र में पटना के आधुनिक नगर का विकास आरम्भ हुआ।

पटना नगर के प्रशासन की व्यवस्था भी क्रमिक ढंग से विकसित हुई और 1769 ई० में बिहार क्षेत्र के शासन की देखरेख के लिए एक अंग्रेज निरीक्षक की नियुक्ति हुई, जब कि 1774 ई० में रेगुलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत बिहार के प्रशासन के लिए कई व्यवस्था लागू हुई। इसमें पटना के नगर की केन्द्रीय स्थिति बनी रही।

1911 ई० के दिल्ली दरबार में बिहार को पृथक राज्य का रूप दिया गया। 1912 ई० में बिहार एवं उड़ीसा को बंगाल से पृथक राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ और पटना इसकी राजधानी बनी। 19वीं एवं 20वीं शताब्दी में पटना के पश्चिमी भाग का विकास आरम्भ हुआ और नया प्रशासनिक क्षेत्र विकसित हुआ जिसमें राजभवन, सचिवालय, विधान मण्डल आदि का निर्माण हुआ।

देश की स्वतंत्रता के बाद पटना के दक्षिण के दिशा में भी आबादी का विस्तार तेजी से हुआ है। वर्त्तमान पटना की आबादी 12 लाख से अधिक है और इसका क्षेत्र 250 वर्ग कि०मी० है। कोलकाता के बाद यह पूर्वी भारत का सबसे बड़ा नगर है और अबादी के घनत्व के दृष्टिकोण से यह भारत का 14वाँ सर्वाधिक आबादी वाला नगर है। वर्त्तमान में यह शिक्षा और व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र है और सांस्कृतिक क्रिया कलापों में भी इसकी स्थिति प्रशंसनीय है।

शहरीकरण की प्रक्रिया बहुत लम्बी रही है । ग्रामीण एवं सामंती व्यवस्था से हटकर कृषि व्यवस्था से आगे बढ़ते हुए एक नई आर्थिक व्यवस्था लागू हुई जिसने व्यापार, वाणिज्य उद्योग के विकास पर बल दिया । शहरों के इस विकासक्रम ने लोगों को नई चेतना प्रदान की और सुविध एँ दी, तो दूसरी ओर नई समस्याओं को भी जन्म दिया जिनके निदान की आवश्यकता आज है। इस नई सामाजिक संरचना के अन्तर्गत शहरों के द्वारा जहॉ एक ओर व्यवसायी मध्यम एवं श्रमिक वर्ग आये तो उनके साथ वर्गभेद की भावना भी आई जो समाजवादी विचारधारा के विपरीत है एवं लोकतांत्रिक पद्धति को भी प्रभावित करती है । शहरों की निरन्तर प्रगति एवं इनके विस्तार से हमारी जीवन शैली सकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है शिक्षा एवं रोजगार के बेहतर साधन उपलब्ध हुए हैं तो दूसरी ओर स्पर्धा एवं अवसरवाद जैसी नकारात्मक प्रवृति भी बलवती हुई है । एक संतुलित सामाजिक व्यवस्था का निर्माण आधुनिकीकरण के साथ उन आदर्शों के संश्लेषण के साथ ही संभव है जिन्हें हम शहरी व्यस्तता के अन्तर्गत छोड़ते जा रहे हैं ।

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सामंती व्यवस्था से हटकर किस प्रकार की शहरी व्यवस्था की प्रवृत्ति बढ़ी ?
   - (i) प्रगतिशील प्रवृति
   - (ii) आक्रामक प्रवृति
   - (iii) रूढ़िवादी प्रवृति
   - (iv) शोषणकारी प्रवृति
2. शहर को आधुनिक व्यक्ति का किस प्रकार का क्षेत्र माना जाता है ?
   - (i) सीमित क्षेत्र
   - (ii) प्रभाव क्षेत्र
   - (iii) विस्तृत क्षेत्र
   - (iv) अथवा सभी
3. स्थायी कृषि के प्रभाव से कैसा जमाव संभव हुआ ?
   - (i) संपत्ति
   - (ii) ज्ञान
   - (iii) शांति
   - (iv) बहुमूल्य धातु
4. एक प्रतियोगी एवं उद्यमी प्रवृति से प्रेरित किस प्रकार की अर्थव्यवस्था लागू की गई ?
   - (i) जीवन निर्वाह अर्थव्यवस्था
   - (ii) मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था
   - (iii) शिथिल अर्थव्यवस्था
   - (iv) एवं सभी
5. आधुनिक काल में औद्योगीकरण ने किसके स्वरूप को गहन रूप से प्रभावित किया ?
   - (i) ग्रामीणकरण
   - (ii) शहरीकरण
   - (iii) कस्बों
   - (iv) बन्दरगाहों
6. जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक कहाँ होता है ?
   - (i) ग्राम
   - (ii) कस्बा
   - (iii) नगर
   - (iv) महानगर
7. 1810 से 1880 ई. तक लंदन की आबादी 10 लाख से बढ़कर कहाँ तक पहुँची ?
   - (i) 20 लाख
   - (ii) 30 लाख
   - (iii) 40 लाख
   - (iv) 50 लाख

8. लंदन में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा कब लागू हुई ?

(i) 1850 (ii) 1855

(iii) 1860 (iv) 1870

9. कौन सा सामाजिक वर्ग बुद्धिजीवी वर्ग के रूप में उभर कर आया ?

(i) उद्योगपति वर्ग (ii) पूंजीपति वर्ग

(iii) श्रमिकवर्ग (iv) मध्यम वर्ग

10. पूंजीपति वर्ग के द्वारा किस वर्ग का शोषण हुआ ?

(i) श्रमिक वर्ग (ii) मध्यम वर्ग

(iii) कृषक वर्ग (iv) सभी वर्ग

रिक्त स्थानों को भरें–

1. शहरो के विस्तार में भव्य .... का निर्माण हुआ ।
2. लंदन भारी संख्या में .... को अकर्षिक करने में सफल हुई ।
3. शहरों में रहने वाले .... से सीमित थे ।
4. .... देशों में नगरों के प्रति रुझान देखा जाता है ।
5. .... के द्वारा निवास तथा आवासीय पद्धति, जन यातायात के साधन, जन स्वास्थ्य इत्यादि के उपाय किये गये ।

समूहों का मिलान :

1. मैनचेस्टर लंकाशायर शेफिल्ड	1. नगर
2. चिकित्सक	2. वाणिज्यिक राजधानी
3. प्रतियोगी मुद्रा प्रधान अर्थव्यवस्था	3. बेरॉन हॉसमान
4. बम्बई	4. मध्यम वर्ग
5. पेरिस	5. औद्योगिक नगर

लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. किन तीन प्रक्रियाओं के द्वारा आधुनिक शहरों की स्थापना निर्णायक रूप से हुई ?
2. समाज का वर्गीकरण ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में किस भिन्नता के आधार पर किया जाता है?
3. आर्थिक तथा प्रशासनिक संदर्भ में ग्रामीण तथा नगरीय बनावट के दो प्रमुख आधार क्या हैं ?
4. गांव के कृषिजन्य आर्थिक क्रियाकलापों की विशेषता को दर्शायें ।
5. शहर किस प्रकार के क्रियाओं के केन्द्र होते हैं ?
6. नगरीय जीवन एवं आधुनिकता एक-दूसरे से अभिन्न रूप से कैसे जुड़े हुए हैं ?
7. नगरों में विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग अल्पसंख्यक है ऐसी मान्यता क्यों बनी है ?
8. नागरिक अधिकारों के प्रति एक नई चेतना किस प्रकार के आंदोलन या प्रयास से बने ?
9. व्यावसायिक पूंजीवाद ने किस प्रकार नगरों के उद्‌भव में अपना योगदान दिया ?
10. शहरों के उद्‌भव में मध्यम वर्ग की भूमिका किस प्रकार की रही ?
11. श्रमिक वर्ग का आगमन शहरों में किस परिस्थितियों के अन्तर्गत हुआ ?
12. शहरों ने किन नई समस्याओं को जन्म दिया ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शहरों के विकास की पृष्ठभूमि एवं उसके प्रक्रिया पर प्रकाश डालें ।
2. ग्रामीण तथा नगरीय जीवन के बीच की भिन्नता को स्पष्ट करें ।
3. शहरी जीवन में किस प्रकार के सामाजिक बदलाव आए ।
4. शहरीकरण की प्रक्रिया में व्यवसायी वर्ग, मध्यमवर्ग एवं मजदूर वर्ग की भूमिका की चर्चा करें ।
5. एक औपनिवेशिक शहर के रूप में बम्बई शहर के विकास की समीक्षा करें ।

परियोजना कार्य :

1. अपने शहर में पॉच तरह के इमारतों को चुनिए । प्रत्येक के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए, उन्हें बनाने का निर्णय क्यों लिया गया ? उनके लिए संसाधनों की व्यवस्था केसे की गई, उनके निर्माण का उत्तरदायित्व किसे सौंपा गया ? इन इमारतों के स्थापत्य संबंधी आयामों का वर्णन कीजिए और औपनिवेशिक स्थापत्य से उनकी समानताओं या भिन्नताओं को चिन्हित कीजिए।

2. जानकारी प्राप्त कीजिए कि आपके शहर में स्थानीय प्रशासन कौन-सी सेवाएं प्रदान करता है ? क्या जलापूर्ति, आवास, यातायात और स्वास्थ्य एवं स्वच्छता आदि सेवाएं भी उन्हीं के द्वारा प्रदान की जाती है । इन सेवाओं के लिए संसाधनों की व्यवस्था कैसे की जती है ? नीतियॉ किस प्रकार की होती है ?

ईकाई–७

व्यापार और भूमंडलीकरण

१९ वी तथा प्रारंभिक २०वीं शताब्दी में विश्वबाजार का विस्तार और एकीकरण

भूमिका :

विश्व बाजार-उस तरह के बाजारों को हम विश्व बाजार कहेंगे जहाँ विश्व के सभी देशों की वस्तुएँ आमलोगों को खरीदने के लिए उपलब्ध हो। जैसे– भारत की आर्थिक राजधानी 'मुम्बई'।

आज के अर्थजगत में वाणिज्य और व्यापार के अन्तर्गत आने वाली विश्व बाजार की अवधारणा आधुनिक युग की देन है। परन्तु वैश्विक बाजार के सन्दर्भ में इस व्यवस्था के संकेत प्राचीन काल से ही मिलने आरंभ हो चुके थे। प्राचीन भारत में विकसित सिन्धु घाटी सभ्यता का व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीन मिश्र और मेसोपोटामिया की सभ्यता के साथ था। इस व्यापार का केन्द्र दिलमुन (आधुनिक बहरीन) और मेंलुहा (मकरान

वाणिज्यिक क्रान्ति-व्यापार के क्षेत्र में होने वाला अभूतपूर्व विकास और विस्तार जो जल और स्थल दोनों मार्ग से सम्पूर्ण विश्व तक पहुँचा। इसका केन्द्र यूरोप (इग्लैंड) था।



मानचित्र-भारत को विश्व से जोड़ने वाले व्यापारिक मार्ग

औद्योगिक क्रांति-वाष्प शक्ति से संचालित मशीनो द्वारा बड़े-बड़े कारखानो में व्यापक पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन इसका केन्द्र इंग्लैण्ड था-यह १७५० के बाद आरंभ हुआ।

तट पर स्थित) एक बाजार (बड़ा व्यापारिक केन्द्र) ही था। उस काल में विश्व बाजार का और स्पष्ट प्रमाण अलेक्जेण्ड्रीया नामक बड़ा व्यापारिक केन्द्र की चर्चा के क्रम में मिलता है। यह शहर तीन महादेशो अफ्रीका, यूरोप और एशिया के व्यापारियों का केन्द्र था। इस शहर को लाल सागर के मुहाने पर (वत्तर्मान मिश्र के उत्तरी क्षेत्र) महान यूनानी विश्व विजेता सम्राट सिकन्दर ने स्थापित किया था।



अलेगजेन्ड्रीया शहर और बाजार

परन्तु आधुनिक काल के उदय के साथ ही भौगोलिक खोजों, पुर्नजागरण तथा राष्ट्रीय राज्यों के उदय जैसी घटनाओ ने जिस वाणिज्यिक क्रांति को जन्म दिया, सही मायने में विश्व बाजार का स्वरूप इसके बाद ही उभरकर सामने आया। इसका पूर्ण विस्तार औद्योगिक क्रान्ति के बाद हुआ। इस क्रान्ति ने बाजार को तमाम आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र बना दिया। इसी के साथ जैसे-जैसे औद्योगिक क्रान्ति का विकास हुआ बाजार का स्वरूप विश्वव्यापी होता चला गया और 20 वी शताब्दी के पहले तक तो इसनें सभी महादेशों में अपनी उपस्थिति कायम कर ली।

(क) विश्वबाजार का स्वरूप और विस्तार :

उपनिवेशवाद ऐसी राजनैतिक आर्थिक प्रणाली जो प्रत्यक्ष रूप से एशिया और अविकसित अफ्रीक तथा दक्षिण अमेरिका में यूरोपीय देशों द्वारा त्याग किया गया- इसका एक मात्र उद्देश्य था इन देशों का आर्थिक शोषण करना

18 वी सदी के मध्य भाग से इंग्लैण्ड में बड़े-बड़े कारखानो में वस्तुओ का उत्पादन आरंभ हुआ। यह कारखाने बाष्प इंजन से चलते थे। इस प्रक्रिया से वस्तुओ का उत्पादन काफी बढ़ा। उत्पादन के बढ़ते आकार के हिसाब से कच्चे माल की आवश्यकता हुई और तब इंग्लैण्ड ने उ० अमेरिका, एशिया (भारत) और अफ्रीका की ओर अपना ध्यान खीचा। वहाँ उसे पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल और बना-बनाया एक बाजार भी मिला। इसी दो चीजो पर औद्योगिक क्रांन्ति सफल होता इसलिए इंग्लैण्ड इन प्रचुर संसाधनो पर स्थाई अधिकार का प्रयास आरंभ किया। इससे उपनिवेशवाद नामक एक नवीन शासन प्रणाली का उदय हुआ। मैनचेस्टर, लिवरपुल, लंदन इत्यादी बड़े नगरो का उदय इसी का परिणम था जहाँ वस्तुओ का उत्पादन भी होता था और विदेशों में वस्तुओ को बेचा भी जाता। 18 वी और प्रारंभिक 19 वीं शताब्दी का विश्व बाजार ऐसा ही था। विश्व बाजार के इस स्वरूप का आधार था कपड़ा उद्योग।



चित्र-३ : इग्लैण्ड का एक व्यापारिक नगर

औद्योगिक क्रान्ति के फैलाव के साथ-साथ बाजार का स्वरूप विश्वव्यापी होता गया। इसने व्यापार, श्रमिको का पलायन, और पूँजी का प्रवाह इन तीन आर्थिक प्रवृतियो को जन्म दिया। व्यापार मुख्यत: कच्चे मालो को इंग्लैंड और अन्य यूरोपीय देशो तक पहुँचाने और वहाँ के कारखानो में निर्मित वस्तुओ को विश्व के कोने कोने

गिरमिटिया मजदूर : औपनिवेशिक देशों के ऐसे श्रमिक जिन्हें एक निश्चित समझौता द्वारा निश्चित समय के लिए अपने शासित क्षेत्रों में ले जाते थे, इन्हें मुख्यतः नगदी फसलों-जैसे गन्ना के उत्पादन में लगाया जाता था। भारत के भोजपुरी भाषी क्षेत्रों (पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिम बिहार) पंजाब, हरियाणा से गन्ना की खेती के लिए जमैका, फिजी, त्रिनिदाड एव्र टोवैगो, मॉरिशस आदि देशों में ले जाया गया।

में पहुँचाने तक सीमित था। श्रमिको के प्रवाह के अन्तर्गत हम देखते है कि औपनिवेशिक देशो (भारत) से लोगो को निश्चित अवधी के लिए एक समझौता (अनुवंध) के तहत यूरोपीय देश अपने यहाँ या फिर अपने प्रभाव वाले क्षेत्रो में ले जाते थे। इन मजदूरो की मजदूरी बहुत कम होती थी तथा इन्हे मुख्यत: कृषि कार्य (नगदी फसलो गन्ना, चाय, तम्बाकू के उत्पादन) में लगाया जाता था। इस तरह के मजदूरो को गिरमिटिया मजदूर नाम दिया गया।


श्रमिको को बड़े पानी के जहाजो पर भरकर लेजाना

पूँजी पलायन के अन्तर्गत यरोपीय देशों के उद्योगपति औद्योगिक क्रान्ति से प्राप्त भारी लाभो को अपने शासित क्षेत्रो में अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे रेल लाइन का निर्माण, खदान से कोयला निकालने, चाय कॉफी, रबड़, कपास जैसे नगदी फसलो के उत्पादन इत्यादी में बड़ी मात्रा में पूँजी का निवेश किया। इससे उपनिवेशो की अर्थव्यवस्था प्रत्यक्ष रूप से यूरोप के साथ जुड़ गया। इस प्रकार इन प्रक्रियाओ ने यूरोप केन्द्रित एक विश्वव्यापी अर्थ तन्त्र को जन्म दिया। इसी अर्थतन्त्र को हम विश्व बाजार की संज्ञा देते है।

(ख) विश्व बाजार की उपयोगिता :

आर्थिक गतिविधियों को स्वतंत्र रूप से संचालित होना सुनिश्चित करने के लिए बाजार के स्वरूप का विश्वव्यापी होना आवश्यक होता है। व्यपारियो, श्रमिको, पूँजीपतियो, मध्यमवर्ग तथा आम उपभोक्ताओं के हितो को बाजार का विश्वव्यापी स्वरूप सुरक्षित रखता है। किसानो को अपने उपज का अच्छा रिर्टन (कीमत) प्राप्त होता है, क्योकि बाजार ज्यादा प्रतिस्पर्धी होता है। कुशल श्रमिको को विश्व स्तर पर पहचान तथा महत्व और आर्थिक लाभ इसी वैश्विक बाजार में प्राप्त होता है। रोजगार के नये अवसर विश्व बाजार में सृजीत होता है। आधुनिक विचार और चेतना के प्रसार में भी इसका बड़ा महत्व होता है।

(ग) विश्व बाजार के लाभ और हानि :

विश्व बाजार ने व्यापार और उद्योग को तीव्र गति से बढ़ाया, व्यापार और उद्योगो के विकास ने पूँजीपति, मजदूर और मजबूत मध्यमवर्ग नामक तीन शक्तिशाली सामाजिक वर्ग को जन्म दिया। आधुनिक बैकिंग व्यवस्था का उदय और विकास इसी के बाद हुआ। भारत जैसे औपनिवेशिक देशो का सीमित मात्रा में ही सही–औद्योगिकरण और आधुनिकीकरण विश्व बाजार के आलोक में ही हुआ। औपनिवेशिक देशो में रेलमार्ग–सड़क, बन्दरगाह, खनन, बागवानी जैसे संरचनात्मक क्षेत्र का विकास हुआ। कृषि उत्पादन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ, कुछ नवीन फसलो का उत्पादन इसी का परिणम था, जैसे तम्बाकू, रबड़, कॉफी, नील गन्ना इत्यादी कृषि क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन दक्षिण अमेरिका (जो स्पेन का उपनिवेश था) और मैक्सिको में हुआ।

विश्व बाजार ने नवीन तकनीकि को सृजित किया इन तकनीको में रेलवे, वाष्प इंजन, भाप का जहाज, टेलीग्राफ बड़े जलपोत महत्वपूर्ण रहा। इन तकनीकि ने विश्व बाजार और उसके लाभ को कई गुण बढ़ा दिया जैसे 1820 से 1914 के बीच विश्व व्यापार में 25 से 40 गुना वृद्धि हो चुकी थी। इस सम्पूर्ण वैश्विक व्यापार का 60 प्रतिशत हिस्सा कृषि उत्पादो, खनन (कोयला) और कपड़ा का था। शहरी करण का विस्तार और जनसंख्या में महत्वपूर्ण वृद्धि वैश्विक व्यापार का एक बड़ा लाभकारी परिणाम था।

विश्व बाजार के हानि :

साम्राज्यवाद-यूरोपीय देशो द्वारा एशिया और अफ्रीका के क्षेत्रो पर सैनिक शक्ति द्वारा विजय प्राप्त कर उसे अपने प्रत्यक्ष अधीन में रखना।

विश्व बाजार के फैलते स्वरूप ने यूरोपीय देशो में सम्पन्नता के एक नये दौर को पैदा किया लेकिन इस सम्पन्नता के पीछे का सच बहुत कड़वा था। विश्वबाजार ने एशिया और अफ्रीका में उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के एक नये युग को जन्म दिया साथ ही साथ भारत जैसे पुराने उपनिवेशो का शोषण और तीव्र हुआ। उपनिवेशो की अपनी स्थानीय आत्म निर्भर अर्थव्यवस्था जिसका आधार कृषि और लघु उद्योग तथा कुटीर उद्योग था, नष्ट हो गया। इन स्थानीय उद्योगों को यूरोपीय देशो ने व्यवस्थित नीति के तहत नष्ट किया, क्योकि इसी पर उनकी औद्योगिक क्रान्ति सफल होती। व्यापार में वृद्धि और विश्व अर्थव्यवस्था के साथ निकटता ने औपनिवेशिक लोगो के आजीविका को छीन लिया। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है जैसे–भारत का कपड़ा उद्योग (जो प्राचीन काल से भारतीय



प्रथम विश्व युद्ध में बर्वाद हो चुका जर्मनी का एक शहर

व्यापार और वाणिज्य का आधार रहा था)। 1800 ई० में जहाँ भारतीय निर्यात में सूती कपड़ा का हिस्सा 30 प्रतिशत था वही 1815 में घटकर 15 प्रतिशत रह गया। 1870 तक आते-आते यह केवल 3 प्रतिशत रह गया। इसके ठीक विपरित कच्चे कपास का भारत से निर्यात 1800 से 1872 के बीच 5 प्रतिशत से बढ़कर 35 प्रतिशत हो गया।

औपनिवेशिक देशो में विश्व बाजार ने अकाल भुखमरी गरीबी जैसे मानवीय संकटो को भी जन्म दिया। जैसे भारत में 1850 से 1920 के बीच कई बड़े अकाल पड़े जिसमें लाखो लोग मर गये। इस बाजार ने साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा को यूरोपीय देशो के बीच पैदा किया। इससे उग्र राष्ट्रवाद ने जन्म लिया। इन दोनो का विनाशकारी परिणाम प्रथम महायुद्ध के रूप में सामने आया। प्रथम विश्व युद्ध ने मानवीय सभ्यता को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया। इसने विश्व के सामने एक ऐसा संकट पैदा किया जिसकी कल्पना विश्व ने नहीं की थी।

दो महायुद्धो के दरम्यान व्यापार और अर्थव्यवस्था

प्रथम महायुद्ध ने यूरोप की अर्थव्यवस्था को विल्कुल तबाह कर दिया। तत्कालीन विश्व अर्थतन्त्र को नियंत्रित और संचालित करने वाला देश ब्रिटेन और उसके सभी आर्थिक केन्द्र विलकुल नष्ट हो गए। यूरोप के अन्य महत्वपूर्ण अर्थतन्त्र जर्मनी, फ्रांस, इटली इत्यादी भी बहुत ज्यादा प्रभावित हुए। इसके ठीक विपरित संयुक्त राज्य अमेरिका और औपनिवेशिक देशो के अर्थतन्त्र का काफी विकास और फैलाव हुआ; जैसे भारत में इस समय कपड़ा, जूट, खनन आदि क्षेत्रो का विकास भारतीय उद्योगपतियो के प्रयास से हुआ। टाटा, बिड़ला, गोदरेज, जमना लाल बजाज इत्यादी इसी विकास की उपज है।

आर्थिक मंदी : अर्थतन्त्र में आनेवाली वैसी स्थिति जब उसके तीनों आधार कृषि, उद्योग और व्यापार का विकास अवरूद्ध हो जाए। लाखो लोग बेरोजगार हो जाए, बैंकों और कंपनियों का दिवाला निकल जाए तथा वस्तु और मुद्रा दोनों की बाजार में कोई कीमत नहीं रहे।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा यूरोप की अर्थव्यवस्था को फिर से खड़ा करने का गंभीर प्रयास किया गया। चूँकि उस समय एकमात्र देश वही था जो यूरोप को पुर्ननिर्मित कर सकता था। उसके प्रयासो से 1920 से 1927 तक यूरोप और अमेरिका में आर्थिक प्रगति काफी हुआ। वहाँ नवीन तकनीकि की उन्नति के आधार पर नये उद्योगो का विस्तार काफी हुआ। अमेरिका के अपने प्रगति से उसके कंपनियो को काफी लाभ हुआ और खुद उसकी सरकार को भी, जिसे वह यूरोपीय देशो को कर्ज देने में लगाया। अमेरिका में तीन क्षेत्र कृषि, आवास और निर्माण (मोटरकार उद्योग) में काफी प्रगति हुआ। परन्तु यह स्थिति लम्बे समय तक नहीं चला, 1929 ई० तक आते-आते दुनिया एक ऐसे आर्थिक संकट में घिर गया जिसका उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया था।

(क) आर्थिक मंदी के कारण :

1929 के आर्थिक मंदी का बुनियादी कारण स्वंय इस अर्थव्यवस्था के स्वरूप में ही समाहित था। प्रथम महायुद्ध के चार वर्षो में यूरोप को छोड़ कर बाजार आधारित अर्थव्यवस्था का विस्तार होता चला गया, उसके मुनाफे बढ़ते चले गये दूसरी

नया शब्द :
शेयर बाजार : वैसा स्थान जहाँ व्यापारिक और औद्योगिक कंपनियों के बाजार मूल्य का निर्धारण होता है ।

तरफ, अधिकांश लोग गरीबी और अभाव मे पिसती रहे। नवीन तकनीकी प्रगति तथा बढ़ते हुए मुनाफे के कारण उत्पादन में जो भारी वृद्धि हुई उससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि जो कुछ उत्पादित किया जाता था, उसे खरीद सकने वाले लोग बहुत कम थे।

नया शब्द
सट्टेबाजी : कंपनियों में पूँजी लगा कर उसका हिस्सा खरीदना ताकि उसका मूल्य बढ़े और पुनः उसे बेच देना

कृषि क्षेत्र में अति–उत्पादन की समस्या बनी हुई थी कृषि क्षेत्र में यह अति उत्पादन प्रथम महायुद्ध के बाद भी बना रहा, लेकिन उसे खरीद सकने वाले लोग बहुत कम थे। इससे उन कृषि उत्पादों की कीमते गिरी। गिरती कीमतो से किसानो की आय घटी, अतः इस स्थिति से निकलने के लिए उन्होंने उत्पादन को और बढ़ाया ताकि कम कीमत पर ज्यादा माल बेचकर अपना आय स्तर बनाए रखा जा सके। इसने बाजारो में कृषि उत्पादो की आमद और बढ़ा दी तथा कीमते और नीचे चली गई। कृषि उत्पाद पड़ी–पड़ी सड़ने लगी। इस स्थिति का आकलन करते हुऐ आधुनिक अर्थशस्त्री काडलिफ ने अपनी पुस्तक ''दि कॉमर्स ऑफ नेशन'' मे लिखा है कि विश्व के सभी भागो में कृषि उत्पादन एवं खाद्यानो के मूल्य की विकृति 1929–32 के आर्थिक संकटो का प्रमुख कारण था।

1920 के दशक के मध्य में बहुत सारे देशो ने अमेरिका से कर्ज लेकर अपनी युद्ध से तबाह हो चुके अर्थव्यवस्था को नये सिरे से विकसित करने का प्रयास किया। जब स्थिति अच्छी थी तबतक अमेरिकी पूँजीपतियो ने यूरोप को कर्ज दिये लेकिन अमेरिका के घरेलू स्थिति में संकट के कुछ संकेत मिलने के साथ ही वे लोग कर्ज वापस मॉगने लगे। इससे यूरोप के सभी देशो के समक्ष गहरा संकट आ खड़ा हुआ। इस परिस्थिति में यूरोप के कई बैंक डूब गये। महत्वपूर्ण देशो की मुद्रा मूल्य गिर गई। इसमें और बड़ा संकट तब आ गया, जब यूरोप अपने आप को यान्त्रिक उत्पादन पर निर्भर कर लिया। प्रथम माहयुद्ध के बाद इस क्षेत्र में यूरोप का एकाधिपत्य समाप्त हो गया, कनाडा, रूस और औपनिवेशिक देशो से उसे कड़ी चुनौती मिली। रूस और कनाडा ने सस्ते अनाज को उत्पादित किया, जिसके कारण कृषि आधारित यूरोपीय देश तबाह हो गया।

अमेरिका में संकट के लक्ष्ण प्रकट होते ही उसने कुछ संरक्षणात्मक उपाय करने आरंभ किए। आयातित वस्तुओ पर उसने दो गुना सीमा शुल्क लगा दिया, साथ ही आयात की मात्रा को भी उसने सीमित किया। संकट का धीरे–धीरे अन्य देशो में प्रकट होने के साथ ही सभी राज्य यह प्रयास करने लगे कि अपनी आवश्यकता की अधिकांश वस्तुएँ स्वयं के द्वारा ही उत्पादित कर

लिया जाए। इस संकुचित आर्थिक राष्ट्रवाद ने विश्व व्यापार के बाजार आधारित व्यवस्था की कमर ही तोड़ दी। आर्थिक मंदी में अमेरिका के बाजारो में शुरू हुआ सट्टे बाजी की प्रवृति भी निर्णायक रहा। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अमेरिका की आर्थिक समृद्धि में काफी वृद्धि हुई जिससे वहाँ के पूँजीपति अपनी अतिरिक्त पूँजी को सट्टा में लगाने के लिए आकर्षित हुए।आरंभ में काफी लाभ हुआ, यह आर्थिक समृद्धि की चरम अवस्था थी। इसके बाद ही वास्तविक संकट उत्पन्न हुआ, जो प्रसिद्ध शेयर बाजार न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज (बाल स्ट्रीट) के माध्यम से उभरकर सामने आया।

(ख) आर्थिक मंदी का प्रभाव :

नया शब्द :

संरक्षणवाद–अपने वस्तुओं को विदेशी वस्तुओं के आमद से होने वाले नुकसान से उसेबचाने के लिए विदेशी वस्तु पर ऊँची आयात शुल्क लगाना ।

इस मंदी का सबसे बुरा असर अमेरिका को ही झेलना पड़ा। मंदी के कारण बैको ने लोगो को कर्जे देना बन्द कर दिया और दिए हुए कर्ज की वसूली तेज कर दी, किसान अपनी उपज को नही बेच पाने के कारण बर्बाद हो गए। कर्ज की कमी से कारोबार ठप पड़ गया इससे बैंको का कर्ज वापस नहीं चुक पाया। बैंको ने लोगो के समानो (मकान, कार, जरूरी चीजो) को कुर्क कर लिया गया। लोग सड़क पर आ गए। कारोबार के ठप पड़ने से बेरोजगारी बढ़ी, कर्ज की वसूली नहीं होने से बैंक बर्बाद हो गए एवं कई कंपनियाँ बंद हो गई। 1933 तक 4000 से ज्यादा बैंक बंद हो चुके थे और लगभग 110000 कंपनियाँ चौपट हो गई थी।



आर्थिक मंदी का प्रभाव

अन्य देशो पर होने वाले आर्थिक प्रभावों में जर्मनी और ब्रिटेन इस आर्थिक मंदी से सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ। फ्रांस अपने आप को इस मंदी से इस लिए बचा पाया क्योकि उसे जर्मनी से काफी मात्रा में युद्ध हर्जाना की राशि प्राप्त हुआ। जर्मनी की स्थिति सबसे खराब रही। युद्ध हर्जाना चुकाने के कारण प्रथम विश्व युद्ध के तुरत बाद के आर्थिक विकास के काल में भी उसकी स्थिति नही बदली। 1922 और 1923 यह दो वर्ष सबसे खराब रहा, उसके मुद्रा मार्क का इन वर्षो में काफी अवमूल्यन हो गया। 1924 के बाद उसकी स्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ। इस वर्ष से संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा उसे

भारी मात्रा में ऋण प्राप्त हुआ। इससे उसकी स्थिति में काफी सुधार हुआ, परंतु 1929 की महा मंदी ने उसे पुनः 1919 के वर्ष में पहुँचा दिया, लगभग 60 लाख लोग बेरोजगार हो गए, सम्पूर्ण देश अराजकता में डूब गया इसी का लाभ उठा कर हिटलर अपने आप को सत्तासीन किया। 1929 के बाद ब्रिटेन के उत्पादन, निर्यात, रोजगार, आयात तथा जीवन निर्वाह स्तर- इन सब में भी तेजी से गिरावट आयी। लगभग 35 लाख लोग बेरोजगार हो गए। इस महामंदी से निकलने के लिए बाजार अर्थव्यवस्था के प्रतिकूल संरक्षणवाद जैसे कठोर अर्थिक उपाय किए गए जिससे विश्वव्यापार काफी प्रभावित हुआ।

अगर हम इस महामंदी का भारत पर पड़ने वाले प्रभाव को देखें तो यह स्पस्ट होता है कि 20 वी सदी की शुरूआत तक वैश्विक अर्थव्यवस्था कितनी एकीकृत हो चुकी थी। महामंदी ने भारतीय व्यापार को फौरन प्रभावित किया। 1928 से 1934 के बीच देश के आयात निर्यात घटकर लगभग आधी रह गई कृषि उत्पादो की कीमत यहाँ काफी गिर गई, जिसका उदाहरण है 1928 से 1934 के बीच भारत में गेहूँ की कीमत 50 प्रतिशत गिर गया। शहरी लोगो की अपेक्षा गॉव के लोग इस मंदी से ज्यादा प्रभावित हुए। कृषि दाम में कमी के बाबजूद अंग्रेजी सरकार लगान की दर कम करने को तैयार नही थी; जिससे किसानो में असंतोष की भावना बढ़ी। नगदी फसलो को उपजाने वाले किसानो पर इसका प्रभाव विनाशकारी हुआ क्योकि उनका उत्पादन खर्च बहुत ज्यादा होता था और उस अनुपात में फायदा नहीं मिलने पर वे महाजनो के कर्ज में डूबते चले गऐ। इन्ही सालो में पहली बार भारत से सोने का निर्यात होने लगा जो ब्रिटेन अपने कम हो रहे सोने को पूरा करने के लिए कर रहा था। इसी परिप्रेक्ष में हम यह भी कह सकते है कि इस मंदी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन को प्रारंभ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(ग) विश्व बाजार के आलोक में बदलते अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध :

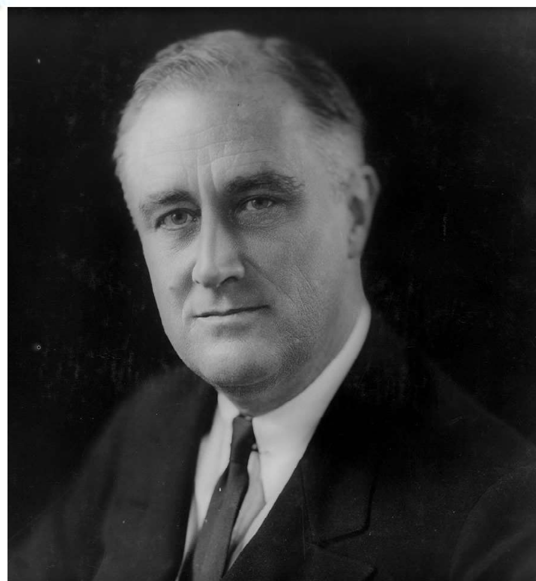
सन् 1920 के बाद जो भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विकसित हुआ उसमें आर्थिक कारको या आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण स्थान था। 1929 के आर्थिक मंदी को आधार वर्ष मानकर 1920 से 1945 के बीच बनने वाले आर्थिक सम्बन्धो को दो भागो में बॉट कर समझ सकते है। 1920 से 1929 तक का काल सामान्यतः आर्थिक समुत्थान एवं विकास का काल था। प्रथम महायुद्ध के बाद विश्व पर से यूरोप का प्रभाव क्षीण हो गया। यद्यपि उपनिवेशो (एशिया-अफ्रीका) पर उसकी पकड़ बनी रही, लेकिन इस दौर में संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और सोवियत संघ (रूस) ये तीन देश विश्व की सर्वप्रमुख शक्ति के रूप में उभरे। संयुक्त राज्य अमेरिका में युद्ध

के तुरंत बाद का दो वर्ष आर्थिक संकट का काल था। यह संकट मांग में कमी के कारण उत्पन्न हुआ। इन दो वर्षो में एक लाख लोग बेरोजगार हो गए, श्रमिक हड़तालों का सिलसिला चल पड़ा। 1922 के बाद कुछ स्थिति बदली वहाँ तकनीकी उन्नति के आधार पर औद्योगिक विस्तार काफी हुआ, जिसका प्रमाण है 1928-29 में 50 लाख कार की बिक्री हुई। इसी विकास का एक नकारात्मक परिणाम अमेरिका में यह देखने को मिला कि देश की आर्थिक शक्ति और सत्ता कुछ हाथो में और कम्पनियो के पास केन्द्रित हो गया।

सोवियत रूस और जापान इन दो देशो ने भी 1920 से 1929 के बीच आर्थिक क्षेत्र में काफी प्रगति किया। रूस अपनी नई आर्थिक व्यवस्था को विश्व स्तर पर प्रचारित और प्रसारित करने की कोशिश की तो उधर जापान अपनी आर्थिक प्रगति को बनाये रखने के लिए साम्राज्यवादी महत्वा कांक्षा को आक्रमक रूप दिया जिसका शिकार चीन हुआ। इस काल में भारत और अन्य औपनिवेशिक देशो में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार निर्णायक रूप से हुआ क्योकि प्रथम महायुद्ध के बाद उन्हे आर्थिक संकटो का सामना करना पड़ा । दूसरे, उस समय शासक देशो द्वारा किया गया स्वराज का वायदा पूरा नहीं हुआ।

नया शब्द :
न्यू-डील : जनकल्याण की एक बड़ी योजना से सम्बंधित नई नीति जिसमें आर्थिक क्षेत्र के अलावा राजनीतिक और प्रशासनिक नीतियों को भी नियमित किया गया।

1929 के बाद जो अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध विकसित हुआ उसका एकमात्र उद्देश्य आर्थिक मंदी के दुष्प्रभावो को कम करना या समाप्त करना था। इस महामंदी की शुरूआत अमेरिका से हुआ जो 1933 तक बना रहा। इस बीच अमेरिकी राजनीति में फ्रैंकलिन डी रूजवेल्ट का उदय हुआ (1932 ई० में) । उन्होंने 'नई व्यवस्था' (न्यू डील) नामक नवीन आर्थिक नीतियो को अमेरिका में लागू किया । इसमें जनकल्याण की एक व्यापक योजना शुरू किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य था कृषि और उद्योग में संतुलन लाना, साथ ही साथ मानव समाज और स्वाधीनता को



फ्रैंकलीन डी0 रूजवेल्ट अमेरिकी राष्ट्रपति

सुरक्षित रखना भी था। जनकल्याण के तहत रेलमार्ग, सड़क, पुल, स्थानीय विकास के कार्य के लिए ऋण दिया गया ताकि व्यवसाय पनप सके और रोजगार भी लोगो को मिले। औद्योगिक क्षेत्र में व्यापार और उत्पादन का नियमन, मजदूरी में वृद्धि, काम के घण्टे तय करना, मूल्यो में वृद्धि को रोकना इत्यादी कार्य किया गया। कृषि क्षेत्र में किसानो की क्रय शक्ति तथा सामान्य आर्थिक स्थिति को युद्ध के पूर्व के स्तर तक ले जाने का प्रयास हुआ।

उधर यूरोपीय देशो में इस मंदी से निकलने के लिए जो प्रयास हुए उसके अन्तर्गत सभी सरकारो ने कड़ा मुद्रा नियन्त्रण स्थपित किया। कृषि प्रधाान पूर्वी यूरोपीय देश (बल्गारिया, हंगरी, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, सर्बिया) तथा ब्रिटिश कॉम्नबेल्थ (ब्रिटिश साम्राज्य से अलग हुए देश का संघ) देशों ने 1932 में ओटावा समझौता कर अपने आयात निर्यात को सन्तुलित किया। नार्वे स्वीडन जैसे देशों ने ओस्लो गुट जैसे क्षेत्रीय प्रवन्धन भी किया। 1932 में लोजान सम्लेन हुआ जिसमें जर्मनी के क्षतिपूर्ति राशि को कम कर दिया गया, ताकि व्यापार बढ़े। इसी समय फ्रांस के विदेश मंत्री ब्रिया ने पहली बार यूरोप में एक आर्थिक संघ बनाने का सुझाव दिया जो सफल नहीं हो सका। राष्ट्रसंघ के स्तर पर इस संकट के हल के लिए 1933 में लन्दन में एक सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमे 67 देशो ने भाग लिया। इस सम्मेलन में मुद्रा में स्थिरता लाने और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में संरक्षणवाद की नीति को अन्त कर परस्पर व्यापार और सहयोग की नीति अपनाने की बात कही, जिसका सभी देशो ने समर्थन तो किया लेकिन तत्कालीन राजनैतिक स्थिति में यह सफल नहीं हुआ।

नया शब्द :

अधिनायकवाद : वैसी राजनैतिक प्रशासनिक व्यवस्था जिसमें एक व्यक्ति के हाथ सारी शक्तियाँ केन्द्रित होती है। वह व्यक्ति परिस्थियों का लाभ उठाकर जनता के बीच नायक की छवि बनाता है।

आर्थिक मंदी के आलोक में यूरोप की राजनैतिक स्थिति में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हम देखते है एक रूस में स्थापित साम्यवादी आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था का आकर्षण सम्पूर्ण विश्व में बढ़ा क्योकि वही एक देश था जिसपर इस मंदी का प्रभाव विलकुल नहीं पड़ा, जिससे उसका प्रभाव बहुत बढ़ा। दुसरे, इटली तथा जर्मनी में अधिनायकवादी शासन प्रणाली का उत्कर्ष। चूँकि विश्व के सभी देश आर्थिक मंदी से निवटने में इस कदर उलझ गये कि उन दो देशो में उभरने वाली नवीन राजनैतिक प्रवृत्तियो को देख और समझ नहीं पाये। इटली और जर्मनी में लोक तंत्र की विफलता और अधिनायकवादी तथा तानाशाही तन्त्र का उदय यूरोप के कई और देशो को अपने लपेटे मे ले लिया, जैसे स्पेन, ऑस्ट्रिया, यूनान इत्यादि। यूरोप में आर्थिक मंदी के बाद उदित होने वाले राजनैतिक व्यवस्था अपनी नीतियों से द्वितीय महायुद्ध को अवश्यमभावी बना दिया।

१९५० के दशक के बाद परिवर्तन

द्वितीय महायुद्ध समाप्त होने के बाद उससे उत्पन्न समस्या को हल करने तथा व्यापक तबाही से निवटने के लिए पुर्ननिर्माण का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आरंभ हुआ। यह प्रयास 1945 ई० के याल्टा सम्मेलन (वर्तमान रूस का स्थान) के निर्णयानुसार अस्तित्व में आया। संयुक्त राष्ट संघ के तत्वावधान में हुआ। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपना यह सरा कार्य अपने विभिन्न अनुसंगी संस्थाओ (यूनेस्को, विश्वस्वास्थ संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय इत्यादि के माध्यम से करना आरंभ किया। परन्तु पुर्ननिर्माण का सभी व्यवहारिक काम दो बड़े प्रभावो वाले देश संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ (रूस) के साए में हुआ। ये दोनो देश अलग-अलग आर्थिक व्यवस्था वाले देश थे और उनकी विशेषताओ के आलोक में ही युद्दोत्तर काल के आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीय संम्बन्ध विकसित हुए।

दो महायुद्ध के बीच मिले आर्थिक अनुभवो से सबक लेते हुए यह तय किया गया कि बाजार आधारित अर्थव्यवस्था बिना उपभोग के कायम नहीं रह सकती (यह सबक 1929 के महामंदी से मिला)। दुसरी बात यह कि अर्थव्यवस्था की रीढ़, रोजगार के लक्ष्य, को तभी हासिल किया जा सकता है जब सरकार के पास वस्तुओ, पूँजी और श्रम की आवाजाही को नियंत्रित करने की ताकत उपलब्ध हो। अतः द्वितीय महायुद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य यह था कि औद्योगिक विश्व में आर्थिक स्थिरता एवं पूर्ण रोजगार बनाए रखा जाए। चूंकि यह भी महशूश किया गया कि इसी आधार पर विश्वशांति भी स्थापित की जा सकती थी। उपरोक्त आर्थिक विचार और उद्देश्य पर जुलाई 1944 में अमेरिका स्थित न्यू हैम्पशायर ''ब्रेटन वुडस'' नामक स्थान पर संयुक्त राष्ट्र मैद्रिक एवं वित्तीय सम्मेलन हुआ, जिसमें एक सहमति बनी जिसके बाद अन्तर्रास्ट्रीय मुद्रा कोष (आई एम एफ) की स्थापना की गई। युद्दोत्तर पुर्ननिर्माण के लिए पैसे का इंतजाम करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण एवं विकास बैंक (विश्व बैंक) का भी गठन किया गया। इन दोनो वित्तीय संस्थाओ को जुडवॉ संतान के नाम से जाना जाता है। इन दोनो संस्थाओ ने 1947 में औपचारिक रूप से काम करना आरंभ किया, इन दोनो ही संस्थाओ पर ''संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव'' कायम है और आज भी वह अपनी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक नीतियो और सम्बन्धो को निर्धारित करने में इसका भरपूर इस्तेमाल करता है।

(क) १९४५ से १९६० के दशक के बीच अनतर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध :

1945 से 1960 के दशक के बीच विकसित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समबन्धो को तीन क्षेत्रों मे विभाजित करके हम देखेगे। 1945 के बाद विश्व में दो भिन्न अर्थव्यवस्था का प्रभाव बढ़ा और दोनो ने विश्व स्तर पर अपने प्रभावो तथा नीतियो को बढ़ाने का प्रयास किया। इस स्थिति से विश्व में एक नवीन आर्थिक और राजनैतिक प्रतिस्पर्धा ने जन्म लिया। सम्पूर्णविश्व मुख्यत: दो गुटो में विभाजित हो गया। एक साम्यवादी अर्थतन्त्र वाले देशो का गुट जिसका नेतृत्व सोवियत रूस कर रहा था, जिसकी विशेषता थी राज्य नियंत्रीत अर्थव्यवस्था, और दुसरा, पूँजीवादी अर्थतन्त्र वाले देशो का गुट जिसकी विशेषता थी, बाजार और मुनाफा आधारित आर्थिक व्यवस्था जिसका नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा था। सोवियत रूस, पूर्वी यूरोप (हंगरी, रोमानिया, बुल्गारिया, पोलैण्ड, पूर्वी जर्मनी इत्यादि) और भारत जैसे नवस्वतंत्र देशो में अपनी आर्थिक व्यवस्था को फैलाने का गंभीर प्रयास किया जिसमें पूर्वी यूरोप तथा उत्तर कोरिया, वियतनाम जैसे देशो में उसे पूर्ण सफलता मिली जबकि भारत जैसे देशो को वह सिर्फ अपने प्रभाव में ही ला सका।

दूसरा क्षेत्र, पूँजीवादी अर्थतन्त्र वाले देशो के बीच बनने वाले अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के विकास के अन्तर्गत आएगा। यह क्षेत्र पूर्णत: संयुक्त राज्य अमेरिका के द्वारा संचालित हो रहा था। इसका प्रमुख उद्देश्य साम्यवादी अर्थतन्त्र और विचार के बढ़ते प्रभाव को रोकना था। संयुक्त राज्य अमेरिका ने विश्व के दो क्षेत्रो दक्षिण अमेरिका और मध्य तथा पश्चिम एशिया के तेल सम्पदा सम्पन्न देशो (इराक, इरान साउदी अरब, जर्डन, यमन, सीरिया, लेवनान) में जबरन अपनी नीतियो को थोपने का काम किया। दक्षिण अमेरिकी महादेश के देशो में तो संयुक्त राज्य अमेरिका अपनी खुफिया संस्था - सी०आई०ए० के माध्यम से सैनिक शक्ति के इस्तेमाल की हद तक जाकर अपना प्रभाव स्थापित किया; जबकि पश्चिम मध्य एशिया के देशो पर अपने प्रभाव को अरब बहुल आबादी वाले फिलिस्तिन क्षेत्र में एक नये यहूदी राष्ट्र इजरायल को स्थापित करवाकर, बनाए रखने में सफल हुआ। वस्तुत: अमेरिका यह जानता था कि बाजार आधारित व्यवस्था के आधुनिक रूप की रीढ़ तेल और गैस नामक उर्जा स्रोत है जिसकी कमी उसके सहयोगी अधिकांश पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वाले देशो में था। अत: वह हर हाल में इस क्षेत्र पर अपना प्रत्यक्ष प्रभाव बनाए रखना चाहता था। वर्त्तमान में इस क्षेत्र के अधिकांश देशो में इस सम्पदा का दोहन उसकी या उसके सहयोगी राष्ट्रो की कम्पनियों द्वारा किया जा रहा है। यद्यपि एक बात यह भी है कि अमेरिका के

उन क्षेत्रो पर स्थापित इस प्रभाव में वहाँ की अपनी राजनैतिक, प्रशासनिक व्यवस्था का भी बड़ा योगदान है। उन सभी देशो में शासन का स्वरूप राजशाही या तनाशाही सैनिक वाद का है जिसमें जनता की आवाज को सुना नहीं जाता।

इस दूसरे क्षेत्र का दूसरा घड़ा पश्चिमी यूरोप (ब्रिटेन, फ्रांस, प० जर्मनी, बाल्टिक देश स्पेन) था। यहाँ भी 1945 से 1960 के दशक में महत्वपूर्ण आर्थिक सम्बन्धो का विकास हुआ था। इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण विशेषता 1945 के बाद यह रही की विश्व राजतीति और अर्थक्षेत्र में इन देशो का प्रभाव काफी क्षीण हो गया। 1970 तक एशिया और अफ्रीका में स्थापित उनके सारे उपनिवेश उनसे छीन गए, जिसके संसाधनो का दोहन करके उन देशो ने विश्व पर अपना प्रभाव स्थापित किया था। इस स्थिति से निवटने के लिए तथा साम्यवादी विचार के प्रसार को रोकने के लिए समन्वय और सहयोग के एक नवीन युग की शुरूआत किया गया जिसे एकीकरण (यूरोप की) के रूप में हम जानते है। इस दिशा में पहला प्रयास वैसे तो 1945 के पहले फ्रांस के विदेशमंत्री ब्रिया के यूरोपीय संघ के विचार में हम देखते हैं, लेकिन वास्तविक रूप में इसकी शुरूआत 1944 में उभरकर सामने आया जब नीदरलैण्ड बेल्जियम और लजमवर्ग ने 'बेनेलेक्स' नामक संघ बनाया। इसी प्रकार 1948 में ब्रेसेल्स संधि हुआ जिसमें यूरोपीय आर्थिक सहयोग की प्रक्रिया कोयला एवं इस्पात के माध्यम से शुरू हुआ। इन प्रयासो के बीच पहला बड़ा कदम उठाया गया। 1957 में उस साल यूरोपीय आर्थिक समुदाय, यूरोपीय इकॉनॉमिक कम्युनिटि एवं ई०ई०सी० की स्थापना की। इसमें फ्रांस, पं० जर्मनी, बेल्जियम, हालैण्ड, लग्जमवर्ग और इटली शामिल हुए। इन देशो ने एक साझा बाजार स्थापित किया। ग्रेट ब्रिटेन 1960 में इसका सदस्य बना। इन सभी प्रयासो के बीच हमे यह हमेशा ध्यान में रखना होगा कि सं०रा० अमेरिका का प्रत्यक्ष प्रभाव इन सभी देशो पर स्पस्ट रूप से बना रहा क्योकि युद्दोत्तर पुर्ननिर्माण में उसी के द्वारा सभी आर्थिक सहायता दिया जा रहा था।

द्वितीय महायुद्ध के बाद एक तीसरा क्षेत्र भी था, जहाँ नवीन आर्थिक सम्बन्ध विकसित हुआ वह क्षेत्र था एशिया और अफ्रीका के नवस्वतंत्र देशों का। 1947 में भारत के आजादी के साथ ही इन देशो में स्वतंत्रता की एक नई लहर पैदा हो गई और अगले 15 वर्षो में सभी देश लगभग आजाद हो गए। इन देशो पर तत्कालीन विश्व के दोनो महत्वपूर्ण आर्थिक शक्ति सं०रा०

अमेरिका और सोवियत रूस अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे। इस प्रयास में अमेरिका की सहायता विश्व बैंक और अनतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भरपूर रूप से की जबकि रूस अपने विचारो और राजनैतिक शक्ति का इस्तेमाल ज्यादा कर रहा था। चूँकि ये सभी नवस्वतंत्र देश लम्बे औपनिवेशिक शासन के दौरान आर्थिक रूप से विल्कुल विपन्न हो गए थे इसलिए अपनी स्वतंत्रा को बचाए रखने के लिए इन्हे उन दोनो देशो से आर्थिक और राजनैतिक दोनो प्रकार के सहयोग चाहिए था। दोनो देशो ने अपनी नीतिया और आर्थिक विचारो के अनुसार सहयोग किया, साथ ही अपना प्रभाव भी उन देशो पर बढ़ाया। इस प्रयास में अमेरिका का सहयोग वहाँ की बहुराष्ट्रीय कंपनियो ने भी किया। इसके उदाहरण के रूप में हम भारत के लौह इस्पात उद्योग को लेते है, जिसका विकास अमेरिका तथा उसके सहयोगी राष्ट्रो और सोवियत रूस दोनो के सहयोग से हुआ।



भारत का एक लौह-इस्पात कारखाना

(ग) भूमंडलीकरण आज के जीविकोपार्जन और भूमंडलीकरण का अन्तर्साम्य अध्ययन क्षेत्र :

भूमंडलीकरण राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक जीवन के विश्वव्यापी समायोजन की एक प्रक्रिया है, जो विश्व के विभिन्न भागों के लोगों को भौतिक व मनोवैज्ञानिक स्तर पर एकीकृत करने का सफल प्रयास करती है अर्थात जीवन के सभी क्षेत्रों में

भूमंडलीकरण-जीवन के सभी क्षेत्रों का एक अर्न्तराष्ट्रीय स्वरूप, जिसने दुनिया के सभी भागों को आपस में जोड़ दिया है-सम्पूर्ण विश्व एक बड़े गाँव के रूप में परिवर्तित हो गया है।

लोगों के द्वारा किए जाने वाले क्रियाकलापो में विश्वस्तर पर पाया जानेवाला एकरूपता या समानता भूमंडलीकरण के अन्तर्गत आएंगा, जैसे वेश-भूषा और खान-पान के स्तर पर कुछ मौलिक विशेषताएँ विश्व के सभी देशों में समान रूप से पाई जा रही है।

नया शब्द
पूँजीवाद : पूँजी पर आधारित एक व्यवस्था जो बाजार और मुनाफा के उपर टिका है।

भूमंडलीकरण के उदय के विषय में इतिहासकारों और विचारको में काफी मतभेद रहा है कुछ विद्वानों का मानना है कि किसी न किसी रूप में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया मानव इतिहास के आरम्भ से ही चल रही है और समय के साथ-साथ उसका स्वरूप बदलता रहा है, जबकि विद्वानों का दूसरा समूह भूमंडलीकरण को पूँजीवाद से जोड़कर देखता है, जिसका उदय आधुनिक काल में हुआ इस दृष्टि से उसका रिश्ता पूँजीवाद से गहराई से जुड़ा हुआ है। इन विचारों के आलोक में भूमंडलीकरण के उदय को 15वीं 16वीं शताब्दी के दौरान माना जा सकता है जो प्रत्यक्षतः आधुनिकीकरण और पूँजीवादी प्रवृति से जुड़ा हुआ है। 19वीं शताब्दी के मध्य से जब पूँजीवाद विश्वव्यापी व्यवस्था बन गया, भूमंडलीकरण का स्वरूप भी व्यापक होता गया। इस समय पूँजी का निर्यात अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों की एक मुख्य विशेषता बन गई और व्यापार का परिमाण भी काफी बढ़ा।

नया शब्द :
शीत युद्ध : राज्य नियंत्रित और बाजार नियंत्रित अर्थव्यवस्था वाले देशों के नेतृत्वकर्ता देशों सोवियत रूस और स० रा० अमेरिका के बीच का सामरिक तनाव

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया उन्नसवीं सदी के मध्य से लेकर प्रथम महायुद्ध के आरंभ तक काफी तीव्र रहा। इस दौरान माल (वस्तु) पूँजी और श्रम तीनों का अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह लगातार बढ़ता गया। इसमें इस दौरान विकसित नवीन तकनीकों का भी उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। परंतु 1914 से 1991 ई० के बीच भूमंडलीकरण की प्रक्रिया धीमी हो गई। दो महायुद्धों, साम्यवादी क्रांति, सोवियत संघ और उसके गुट का निर्माण, उपनिवेशवाद की समाप्ति और भारत जैसे अनेक नवस्वतंत्र देशों का उदय और उसके द्वारा अपने बाजार और संसाधनों को अपने स्वतंत्र आर्थिक विकास के लिए आरक्षित करना तथा शीत युद्ध के कारण भूमंडलीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया बाधित रहा। 1929-1930 के बीच का महामंदी ने तो इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को ही बिल्कुल स्थिर कर दिया तथा व्यापार और पूँजी का प्रवाह बिल्कुल रोक दिया। 1991 के बाद जब सोवियत साम्यवादी गुट का अवसान हो गया तो पूँजीवाद की यह

बिल्कुल नवीन अवधारणा का विकास पुनः एक नये स्वरूप के साथ हुआ।

भूमंडलीकरण नामक शब्द का सबसे पहले इस्तेमाल संयुक्त राज्य अमेरिका के जॉन विलियम्सन ने 1990 में किया। दक्षिण अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका के द्वारा इसे अपनी महत्वपूर्ण आर्थिक नीति के रूप में पहले आरंभ किया। वे देश 1980 के दशक के बाद आर्थिक रूप से काफी जर्जर हो गए थे। धीरे-धीरे यह सम्पूर्ण विश्व के अर्थतंत्र का नियामक हो गया। इसके प्रभाव को कायम करने में विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, 1995 में अस्तित्व में आया विश्व व्यापार संस्था (WTO) तथा पूँजीवादी देशों की बड़ी-बड़ी व्यापारिक और औद्योगिक कंपनियाँ (बहुराष्ट्रीय कंपनी) का बहुत बड़ा योगदान था। साथ ही अपने आर्थिक हितों को सुरक्षित और संरक्षित रखने के लिए गठित क्षेत्रीय संगठनों जैसे जी-8, ओपेक, आसियान, यूरोपीय संघ, जी-15, जी-77, दक्षेस (सार्क) इत्यादि का भी भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

बहुराष्ट्रीय कंपनी : कई देशों में एक ही साथ व्यापार और व्यवसाय करने वाले कंपनियों को बहुराष्ट्रीय कंपनी कहा जाता है। १९२० के बाद से इस तरह की कंपनियों का उत्कर्ष हुआ जो द्वितीय महायुद्ध के बाद काफी बढ़ा।

आज जीविकोपार्जन और भूमंडलीकरण का अन्तर्साम्य संबंध

वर्तमान परिदृश्य में भूमंडलीकरण के प्रभाव को आर्थिक क्षेत्र में अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद से सैनिक शक्ति को आर्थिक शक्ति द्वारा पीछे छोड़ दिया गया। अब किसी भी देश की शक्ति और क्षमता का आकलन उसके पास मौजूद हथियारों या सैनिकों की संख्या के बजाय नागरिकों की समृद्धि के आधार पर किया जाने लगा। अर्थव्यवस्था के शक्ति को स्थापित करने में भूमंडलीकरण के आर्थिक स्वरूप का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मुक्त बाजार, मुक्त व्यापार, खुली प्रतिस्पर्द्धा



कॉल सेंटर

बहुराष्ट्रीय निगमों (कंपनी) का प्रसार उद्योग तथा सेवा क्षेत्र का निजीकरण उक्त आर्थिक भूमंडलीकरण के मुख्य तत्व हैं। इस प्रक्रिया का एक मात्र लक्ष्य विश्व को एक मुक्त व्यापार क्षेत्र में परिवर्तित करना है जिसमें महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठन और संस्थाओं तथा क्षेत्रीय संघों की बड़ी भूमिका है।

अभी जिस समय में हम रह रहे हैं उसमें आर्थिक भूमंडलीकरण का प्रभाव आम जीवन पर साफ दिख रहा है। भूमंडलीकरण के कारण जीवीकोपार्जन के क्षेत्र में जो बदलाव आया है

उसकी झलक शहर कस्बा और गाँव सभी जगह साफ दिखाई पड़ रहा है। वर्तमान दौर में 1991 के बाद सम्पूर्ण विश्व में सेवा क्षेत्र का विस्तार काफी तीव्र गति से हुआ है, जिससे जीवीकोपार्जन के कई नए क्षेत्र खुले हैं। सेवा क्षेत्र का मतलब वैसी आर्थिक गतिविधियों से है जिसमें लोगों से विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करने के बदले पैसा लिया जाता है, जैसे यातायात की सुविधा (बस, हवाई जहाज, टैक्सी) बैंक और बीमा क्षेत्र में दी जाने वाली सुविधा, दूरसंचार और सूचना तकनीक (मोबाइल, फोन, कम्प्यूटर, इंटरनेट) होटल और रेस्टोरेंट, बड़े शहरों में शॉपिंग मॉल– (वैसा स्थान जहाँ एक ही जगह जीवन की सारी अनिवार्य आवश्यकता की वस्तु मिलती है), कॉल सेंटर (वैसी जगह जहाँ किसी कंपनी से संबंधित सभी क्रियाकलापों के विषय में फोन या इंटरनेट पर जानकारी दी जाती है,) इत्यादि। उपरोक्त वर्णित सभी क्षेत्र भूमंडलीकरण के दौरान काफी तेजी से फैला है जिससे लोगों को जीवीकोपार्जन के कई नवीन अवसर मिले हैं।

आप गाँव में रहते हो या शहर में, देखते होगे कि मोबाइल फोन और उससे सम्बन्धित सुविधाओं को देने के लिए कई छोटी–बड़ी दुकाने खुल रही है जिसमें कई लोग कार्य करते हैं। उन सभी को अच्छी आमदनी होती है। इस प्रकार कई निजी (प्राईवेट) कंपनी या बैंक (रिलायंस, आई. सी.आई.सी.आई. बैंक निजी क्षेत्र की सबसे बड़ी बैंक) के लोग आप जैसों को लाभकारी योजनाओं में निवेश करने के लिए प्रेरित करते मिल जाएगें। यही है बीमा क्षेत्र का विस्तार। इससे जुड़कर गाँव या शहर के लाखो लोग रोजगार



मोबाइल पर बात करते हुए आम आदमी

प्राप्त कर रहे हैं। भारत या बिहार के पर्यटक स्थल (बोध गया) के आस-पास रहने वाले लोगों के लिए इस दौर में रोजगार के कई नवीन अवसर उपलब्ध हुए जैसे टुर एवं ट्रेवल एजेंसी (यातायात की सुविधा) रेस्टोरेंट, रेस्ट हाउस, आवासीय होटल इत्यादि। सूचना और संचार के अन्तर्गत ही आप देखते होंगे की निजी डाक सेवा (कोरियर सेवा) साथ-साथ ही तीन-चार कम्प्यूटर लगाकर एक दुकान में तुरन्त तस्वीर दे देना, लिखित सामग्री को छापना, परीक्षा परिणाम की जानकारी देना, नवीन सूचना को प्रदान करना इत्यादि कई ऐसी चीजों को एक साथ किया जाता है। इस क्षेत्र में भारत और बिहार के हजारों लोगों को रोजगार मिला है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक भूमंडलीकरण ने हमारी आवश्यकताओं के दायरे को और उसी अनुरूप में बढ़ाया है। उसकी पूर्ति हेतु नए-नए सेवाओं का उदय हो रहा है जिससे जुड़कर लाखो लोग अपनी जीविका चला रहे हैं। इस प्रक्रिया ने लोगों के जीवन स्तर को भी बढ़या है। वर्तमान दौर में भूमंडलीकरण और जीवकोपार्जन के बीच यही अर्न्तसाम्य है।

इस तरह आधुनिक युग में अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत विश्व अर्थतन्त्र और विश्व बाजार के जिस स्वरूप की चर्चा हमलोग कर रहे थे उसने आर्थिक के साथ-साथ राजनैतिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया। 1919 के बाद विश्वव्यापी अर्थतंत्र में यूरोप के स्थान पर संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस का प्रभाव बढ़ा, जो द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व व्यापार और राजनैतिक व्यवस्था में निर्णायक हो गया। 1991 के बाद विश्व बाजार के अन्तर्गत ही एक नवीन आर्थिक प्रवृति भूमंडलीकरण का उत्कर्ष हुआ जो निजीकरण और आर्थिक उदारीकरण से प्रत्यक्षत: जुड़ा था। भूमंडलीकरण ने सम्पूर्ण विश्व के अर्थतंत्र का केन्द्र बिन्दु संयुक्त राज्य अमेरिका को बना दिया। उसकी मुद्रा डॉलर, पुरे विश्व की मानक मुद्रा बन गई। उसकी कंपनीयों को पुरी दुनिया में कार्य करने की अनुमति मिल गई अर्थात भूमंडलीकरण, उदारीकण और नीजिकरण ने अमेरिका केन्द्रित विश्व अर्थव्यवस्था को जन्म दिया। आज विश्व एक ध्रुवीय स्वरूप में बदलकर प्रभावशाली देश सं० राज्य अमेरिका के आर्थिक नीतिओं के हिसाब से चल रहा है। आर्थिक क्षेत्र में भूमंडलीकरण ने अमेरिका के नवीन आर्थिक साम्राज्यवाद को जन्म दिया जिसका असर आज सम्पूर्ण विश्व में महसूस किया जा रहा है।

अभ्यास

बहुविकल्पी प्रश्न

1. प्राचीन काल में किस स्थल मार्ग से एशिया और यूरोप का व्यापार होता था?
   (क) सूती मार्ग (ख) रेशम मार्ग
   (ग) उत्तरा पथ (घ) दक्षिण पथ
2. पहला विश्व बाजार के रूप में कौन सा शहर उभर कर आया?
   (क) अलेग्जेंन्ड्रिया (ख) दिलमुन
   (ग) मैनचेस्टर (घ) बहरीन
3. आधुनिक युग में अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में होने वाली सबसे बड़ी क्रांति कौन सी थी?
   (क) वाणिज्यिक क्रान्ति (ख) औद्योगिक क्रान्ति
   (ग) साम्यवादी क्रान्ति (घ) भौगोलिक खोज
4. 'गिरमिटिया मजदूर' बिहार के किस क्षेत्र से भेजे जाते थे?
   (क) पूर्वी क्षेत्र (ख) पश्चिमी क्षेत्र
   (ग) उत्तरी क्षेत्र (घ) दक्षिणी क्षेत्र
5. विश्व बाजार का विस्तार आधुनिक काल में किस समय से आरंभ हुआ ?
   (क) 15 वी शताब्दी (ख) 18 वी शताब्दी
   (ग) 19 वी शताब्दी (घ) 20 वी शताब्दी
6. विश्वव्यापी आर्थिक संकट किस वर्ष आरंभ हुआ था ?
   (क) 1914 (ख) 1922
   (ग) 1929 (घ) 1927
7. आर्थिक संकट (मंदी) के कारण यूरोप में कौन सी नई शासन प्रणाली का उदय हुआ ?
   (क) साम्यवादी शासन प्रणाली (ख) लोकतांत्रिक शासन प्रणाली
   (ग) फासीवादी नाजीवादी शासन (घ) पूँजीवादी शासन प्रणाली
8. ब्रेटन वुडस सम्मेलन किस वर्ष हुआ ?
   (क) 1945 (ख) 1947
   (ग) 1944 (घ) 1952

9. भूमंडलीकरण की शुरूआत किस दशक में हुआ?

(क) 1990 के दशक में (ख) 1970 के दशक में

(ग) 1960 के दशक में (घ) 1980 के दशक में

10. द्वितीय महायुद्ध के बाद यूरोप में कौन सी संस्था का उदय आर्थिक दुष्प्रभावों को समाप्त करने के लिए हुआ ?

(क) सार्क (ख) नाटो

(ग) ओपेक (घ) यूरोपीय संघ

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें ।

1. अलेग्जेक्ड्रीय नामक पहला विश्व बाजार .... के द्वारा स्थापित किया गया।
2. विश्वव्यापी आर्थिक संकट .... देश से आरंभ हुआ।
3. .... नामक सम्मेलन के द्वारा विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना हुई?
4. आर्थिक संकट से विश्व स्तर पर .... नामक एक बड़ी सामाजिक समस्या उदित हुआ?
5. .... ने 1990 के बाद भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को काफी तीव्र कर दिया?

सही मिलान करें स्तम्भ 'क' से स्तम्भ 'ख' का

	स्तम्भ 'क'	स्तम्भ 'ख'
(क)	औद्योगिक क्रान्ति	जर्मनी
(ख)	हिटलर का उदय	इंग्लैण्ड
(ग)	विश्व आर्थिक मंदी	1944
(घ)	विश्व बैंक की स्थापना	1929
(ड.)	भूमंडलीकरण की शुरूआत	प्राचीन काल
(च)	विश्व बाजार की शुरूआत	1990 के बाद

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (२० शब्दों में उत्तर दें)

1. विश्व बाजार किसे कहते हैं?
2. औद्योगिक क्रान्ति क्या है?
3. आर्थिक संकट से आप क्या समझते हैं?
4. भूमंडलीकरण किसे कहते हैं?
5. ब्रेटेन वुड्स सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य क्या था?
6. बहुराष्ट्रीय कंपनी क्या है?

लघु उत्तरीय प्रश्न (60 शब्दों में उत्तर दें)

1. 1929 के आर्थिक संकट के कारणों को संक्षेप में स्पष्ट करें।
2. औद्योगिक क्रान्ति ने किस प्रकार विश्व बाजार के स्वरूप को विस्तृत किया?
3. विश्व बाजार के स्वरूप को समझाएँ।
4. भूमंडलीकरण में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के योगदान (भूमिका) को स्पष्ट करें।
5. 1950 के बाद विश्व अर्थव्यवस्था के पुर्ननिर्माण के लिए किए जाने वाले प्रयासों पर प्रकाश डालें।
6. भूमंडलीकरण के भारत पर प्रभावों को स्पष्ट करें।
7. विश्व बाजार के लाभ हानि पर संक्षिप्त टिप्पणि लिखें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (१५० शब्दों में उत्तर दें)

1. 1929 के आर्थिक संकट के कारण और परिणामो को स्पस्ट करे।
2. 1945 से 1960 के बीच विश्वस्तर पर विकसित होने वाले आर्थिक संबंधों पर प्रकाश डालें।
3. भूमंडलीकरण के कारण आमलोगो के जीवन में आने वाले परिवर्त्तनों को स्पस्ट करें।
4. 1919 से 1945 के बीच विकसित होने वाले राजनैतिक और आर्थिक संबंन्धों पर टिप्पणी लिखे ।

5. दो महायुद्धो के बीच और 1945 के बाद औपनिवेशिक देशों में होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनो पर एक निबंध लिखे।

वर्ग में परिचर्चा करे :

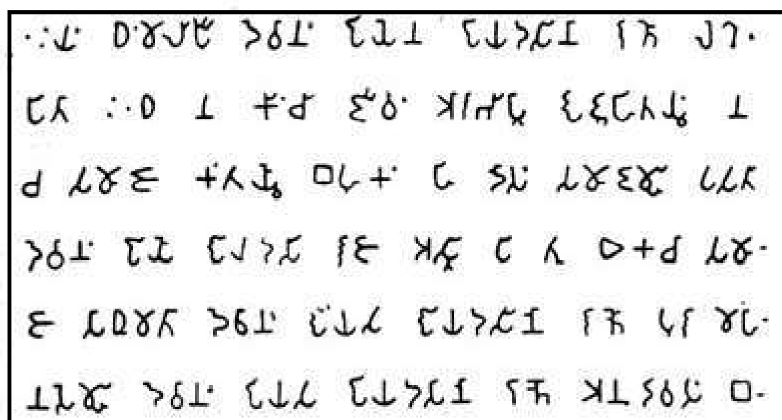
1. भूमंडलीकरण ने किस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव बढ़ाया ? कुछ उदाहरणों से इसे स्पस्ट करते हुऐ अपने सहपाठियो से शिक्षक की उपस्थिति में परिचर्चा करें ।
2. अपने द्वारा इस्तेमाल में लाई जाने वाली उन वस्तुओं के विषय में वर्ग में चर्चा करें जो सम्पूर्ण विश्व मे मिलता है । इसमे अपने शिक्षक का सहयोग ले ।

इकाई : ८

प्रेस–संस्कृति एवं राष्ट्रवाद

आज के वर्तमान युग में हम प्रेस के बिना आधुनिक विश्व की कल्पना नहीं कर सकते हैं। यह हमारे जीवन के हर पहलू को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष, किसी–न–किसी रूप में प्रभावित कर रहा है। चाहे ज्ञान का क्षेत्र हो या सूचना का, मनोरंजन का हो या रोजगार का, इससे प्रत्यक्ष रूप से दुनिया संचालित हो रहा है। आज की दूनिया में छपाई के पूर्व की स्थिति की सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है, जहाँ मनुष्य परिवर्तनकारी घटनाओं से तुरंत परिचित नहीं होता था और ज्ञान एवं सूचना के अभाव में मानव तार्किक एवं मानवीय प्रवृति के विकास से वंचित था।

चूँकि 'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है' अत: सूचना की आवश्यकता ने आविष्कार हेतु ज्ञान जगत को प्रेरित किया। हाँलाकि यह अविष्कार कोई अचानक या एक दिन की घटना नहीं है बल्कि सदियों के अनवरत विकास क्रम की कहानी है जिसने पूरे विश्व की सोंच में क्रांतिकारी बदलाव लाकर रख दिया। छापाखाना के आविष्कार का महत्व इस भौतिक संसार में आग, पहिया और लिपि की तरह है जिसने अपनी उपस्थिति से पूरे विश्व की जीवन शैली को एक नया आयाम प्रदान किया।



ब्राह्मी लिपि में अशोक का अभिलेख

मुद्रण का इतिहास गुटेनवर्ग तक :

मानव सभ्यता के आदिकाल में मनुष्य जो देखता था उसे अपनी स्वभाविक वुद्धि तथा अनुभव के अनुसार विभिन्न प्रकार से अंकित करने का प्रयास करता था। लेखन सामग्री के आविष्कार के पूर्व मानव चट्टानों तथा गुफाओं में अनुभवों एवं प्रसंगों की खुदाई करके चित्रित करता था तथा मिट्टी की टिकियों का उपयोग करता था। बाद में अपने ज्ञान को विभिन्न पत्रकों पर चित्रित करने लगा। 105 (A.D) ई० में टस्-प्लाई-लून (चीनी नागरिक) ने कपास एवं मलमल की पट्टियों से कागज बनाया। फलस्वरूप कागज, लेखन एवं चित्रांकन का एक साधन बन गया। मुद्रण की सबसे पहली तकनीक चीन, जापान और कोरिया में विकसित हुई। लगभग इसकी शुरूआत 594 ई० में लकड़ी के ब्लाक के माध्यम से की गई । 712 ई० तक यह चीन के सीमित क्षेत्रों में फैल गया। 760 ई० तक इसकी लोकप्रियता चीन और जापान में काफी बढ़ गई। ब्लाक प्रिंटिग का उपयोग अब पुस्तकों के पृष्ठ बनाने में होने लगा। दो छपे कागज के टुकड़ों को चिपकाकर एक पन्ना बनाया जाता था। लगभग 10वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक ब्लाक प्रिंटिग की प्रक्रिया द्वारा मुद्रा पत्र भी छापे गए। इसी सदी के उतरार्ध में असामाजिक तत्वों द्वारा इसकी नकल की जाने लगी।

ब्लाक प्रिंटिंग-स्याही से लगे काठ के ब्लाक या तख्ती पर कागज को रखकर छपाई करने की विधि को ब्लाक प्रिंटिंग कहते हैं।



लकड़ी का ब्लाक

मुद्रण कला के आविष्कार और विकास का श्रेय चीन को जाता है। 1041 ई० में एक चीनी व्यक्ति पि-शेंग ने मिट्टी के मुद्र बनाए। इन अक्षर मुद्रों का संयोजन कर छाप लिया जा सकता था। बार-बार अलग करके इन्हें संयोजित भी किया जा सकता था। इस पद्धति ने ब्लाक प्रिंटिग का स्थान ले लिया। कोरियन लोगों ने कुछ समय पश्चात लकड़ी एवं धातु पर खोदकर टाइप बनाए। धातु के मूवेबुल टाइपों द्वारा प्रथम पुस्तक 13वीं सदी के पूर्वार्ध में मध्य कोरिया में छापी गई।

काफी दिनों तक मुद्रित सामग्री का सबसे बड़ा उत्पादक चीनी राजतंत्र था, क्योंकि इसे सिविल सेवा के आकांक्षी लोगों की जिज्ञासा को ध्यान मे रखते हुए बड़ी मात्रा में किताबें छपवानी पड़ती थी। 16 वीं सदी तक परीक्षा देने वालों की तादात बढ़ने से छपी किताबों की मात्रा में भी उसी अनुपात में वृद्धि हुई। 17 वीं सदी तक चीन में शहरी संस्कृति के फलने-फूलने से छपी हुई समग्रियों के उपभोक्ता अब विद्वान और अधिकारी ही नहीं रहे, बल्कि व्यापारी और अमीर महिलाओं के रूप में भी एक वर्ग सामने आया। 19 वीं सदी तक आते-आते मांग को पूरा करने हेतु शंघाई प्रिंट-संस्कृति का नया केन्द्र बन गया और हाथ की छपाई की जगह यांत्रिक छपाई ने ले ली।

यूरोप में आरंभ-गुटेन वर्ग की भूमिका :

यद्यपि मूवेबल टाइपों द्वारा मुद्रण कला का आविष्कार तो पूरब में ही हुआ परन्तु इसकला का विकास यूरोप में अधिक हुआ। इसका प्रमुख कारण था कि चीनी, जापानी और कोरियन भाषा में 40 हजार से अधिक वर्णाक्षर थे, फलतः सभी वर्णों का ब्लॉक बनाकर उपयोग करना कठिन कार्य था। लकड़ी के ब्लॉक द्वारा होने वाली मुद्रण कला समरकन्द-पर्शिया-सिरिया मार्ग से (रेशममार्ग) व्यापारियों द्वारा यूरोप, सर्वप्रथम रोम में प्रविष्ट हुई। 13वीं सदी के अंतिम में रोमन मिशनरी एवं मार्कोपोलो द्वारा ब्लाक प्रिंटिग के नमूने यूरोप पहुँचे । वहाँ इस कला का प्रयोग ताश खेलने एवं धार्मिक चित्र छापने के लिए किया गया। रोमन लिपि में अक्षरों की संख्या कम होने के कारण लकड़ी तथा धातु के बने मूवेबल टाइपों का प्रसार तेजी से हुआ। इसी बीच कागज बनाने की कला 11वीं सदीं में पूरब से यूरोप पहुँची तथा 1336 ई० में प्रथम पेपर मिल की स्थापना जर्मनी में हुई।इसी काल में शिक्षा के प्रसार, व्यापार एवं मिशनरियों की बढ़ती गतिविधियों से सस्ती मुद्रित सामग्रियों की मांग तेजी से बढ़ी। इस मांग की पूर्ति के लिए तेज और सस्ती मुद्रण तकनीक की आवयकता थी जिसे (1430 के दशक में) स्ट्रेसवर्ग के योहान गुटेन वर्ग ने अंततः कर दिखाया।

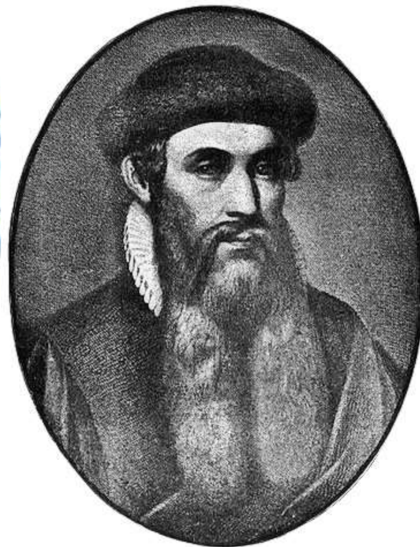
गुटेनवर्ग और प्रिंटिंग प्रेस :

जर्मनी के मेन्जनगर में गुटेनवर्ग ने कृषक-जमींदार-व्यापारी परिवार में जन्म लिया था। वह बचपन से ही तेल और जैतून पेरनेवाली मशीनों से परिचित था । गुटेनवर्ग ने अपने ज्ञान एवं अनुभव से टुकड़ों में विखरी मुद्रण कला के ऐतिहासिक शोध को संगठित एवं एकत्रित किया तथा टाइपों

के लिए पंच, मेट्रिक्स, मोल्ड आदि बनाने पर योजनाबद्ध तरीके से कार्यारंभ किया। मुद्रा बनाने हेतु उसने सीसा, टिन (रांगा) और विसमथ धातुओं से उचित मिश्र-धातु बनाने का तरीका ढूंढ निकाला। सीसे का चयन सस्ता और स्याही के स्थानान्तरण करने की क्षमता के कारण किया गया। रांगा का (टिन) का उपयोग उसकी कठोरता एवं गलाने के गुणों से किया गया।

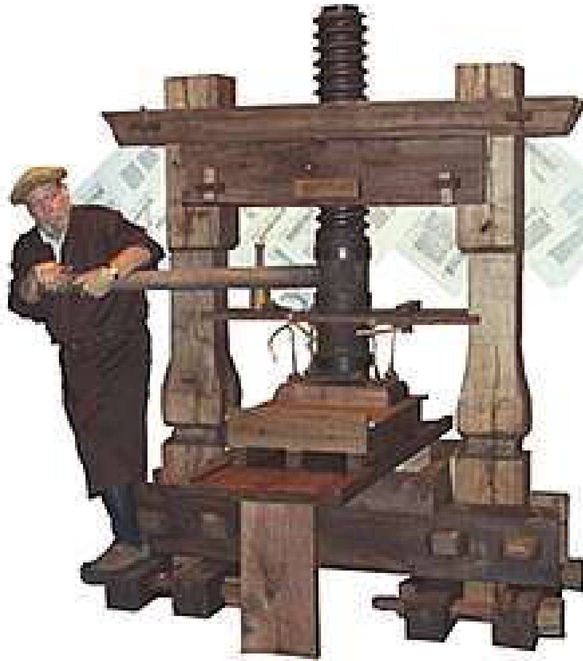
विसमथ धातु : इसकी विशेषता यह है कि यह ठंढ़ा होने पर फैलता है जिससे अन्य धातुओं के ठंढ़ा होने पर होने वाले संकुचन की भरपाई हो सके और परिमाण की सत्यता बनी रहे ।

गुटेनवर्ग ने आवश्यकता के अनुसार मुद्रण स्याही भी बनायी तथा हैण्डप्रेस का प्रथम वार मुद्रण कार्य सम्पन्न करने में प्रयोग किया। इस हैण्डप्रेस में लकड़ी के चौखट में दो समतल भाग- प्लेट एवं बेड-एक के नीचे दूसरा समानान्तर रूप से रखे गए थे। कम्पोज किया हुआ टाइप मैटर बेड पर कस किया जाता था एवं उसपर स्याही लगाकर तथा कागज रखकर प्लेटस् द्वारा दबाकर मुद्रित किया जाता था। इस प्रकार का एक सुस्पष्ट, सस्ता एवं शीघ्र कार्यकरनेवाला गुटेनवर्ग का ऐतिहासिक मुद्रण शोध 1440 वें वर्ष में शुरू हुआ, जब गुटेन वर्ग को फस्ट नामक सुनार (साहुकार) से बाइबिल छापने का ठेका प्राप्त हुआ। ऐसा माना जाता है कि पुराने 42 लाइन एवं 36 लाइन के बाइबिल गुटेनवर्ग द्वारा छापे गए, हँालाकि इनपर प्रकाशन की कोई तारीख अंकित नहीं है। 421 लाइन वाले बाइबिल का मुद्रण गुटेनवर्ग द्वारा शुरू किया गया लेकिन फस्ट और शुओफर द्वारा इसे पूर्ण किया गया क्योंकि दोनों ने गुटेनवर्ग के प्रेस को कोर्ट की डिक्री द्वारा अपने अधि कार में कर लिया था। इसके पश्चात गुटेनवर्ग ने पुनः मुद्र एवं हैण्ड प्रेस का विकास कर 36 लाइन में बाइविल को 1448 ई० में छापा । इसके बाद शुओफर ने 'इन्डलजन्स' नामक पुस्तक छापी।



गुटेनवर्ग

हालाकि विवादों में घिरने के वावजूद मेंज मे शुरू होकर पूर्णता को पहुँची मुद्रण कला का प्रसार शीघ्रता से यूरोपिय देशों एवं अन्य स्थानों में हुआ । कौलग्ने, आग्सवर्ग, वेसल, रोम, वेनिस, एन्टवर्प, पेरिस आदि शहर मुद्रण के प्रमुख केन्द्र के रूप में विकसित हुए। यही शहर आगे



हैंडप्रेस

चलकर पुनर्जागरण एवं व्यापरिक क्रांति के केन्द्र के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए। 1475 ई० में सर विलियम कैक्सटन मुद्रणकला को इंगलैड में लाए तथा वेस्ट मिन्सटर कस्वे में उनका प्रथम प्रेस स्थापित हुआ। पुर्तगाल में इसकी शुरूआत 1544 ई० में हुई, तत्पश्चात यह आधुनिक रूप में विश्व के अन्य देशों में पहुँची।

मुद्रण क्रांति का बहुआयामी प्रभाव :

छापाखाने की संख्या में वृद्धि के परिणाम स्वरूप पुस्तक निर्माण में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक यूरोपीय बाजार में लगभग दो करोड़ मुद्रित किताबें आई; जिसकी संख्या 16वीं सदी तक 20 करोड़ हो गई। इस मुद्रण क्रांति ने आम लोगों की जिंदगी ही बदल दी। आम लोगों का जुड़ाव सूचना, ज्ञान, संस्था और सत्ता से नजदीकी स्तर पर हुआ। फलत: लोक चेतना एवं दृष्टि में बदलाव संभव हुआ।

मुद्रण क्रांति के फलस्वरूप किताबें समाज के सभी तबकों तक पहुँच गई। किताबों की पहुँच आसान होने से पढ़ने की नई संस्कृति विकसित हुई। एक नया पाठक वर्ग पैदा हुआ चूँकि, साक्षर ही पुस्तकों को पढ़ सकते थे अत: साक्षरता बढ़ाने हेतु पुस्तकों को रोचक तस्वीरों, लोकगीत

और लोक कथाओं से सजाया जाने लगा। पहले जो लोग सुनकर ज्ञानार्जन करते थे अब पढ़ कर भी कर सकते थे। पढ़ने से उनके अंदर तार्किक क्षमता का विकास हुआ।

पठन-पाठन से विचारों का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ तथा तर्कवाद और मानवतावाद का द्वार खुला। स्थापित विचारों से असहमत होनेवाले लोग भी अपने विचारों को फैला सकते थे। कुछ लोगों के मन में मुद्रित किताबों को लेकर तरह-तरह के भय व्याप्त थे कि पढ़ने के बाद आम लोगों के व्यक्तित्व में इसका क्या असर होगा । भय था कि लोगों मे बागी और अधार्मिक विचार पनपने लगेंगे और मूल्यवान साहित्य की सत्ता ही समाप्त हो जाएगी।

धर्म सुधारक मार्टिन लूथर ने रोमन कैथोलिक चर्च की कुरीतियों की आलोचना करते हुए अपनी पंचानवे (95) स्थापनाएँ लिखी। इसकी एक प्रति विटेनवर्ग गिरजाघर के दरवाजे पर टाँग दी गई। लूथर ने चर्च को इसके माध्यम से शास्त्रार्थ के लिए चुनौती भी दी। लूथर के लेख आम लोगों (स्वतंत्र विचारों के पोषक) में काफी लोकप्रिय हुए। कैथोलिक चर्च की सत्ता एवं उसके चरित्र पर लोगों द्वारा प्रश्नचिन्ह उठाए जाने लगे। फलस्वरूप चर्च में विभाजन हुआ और प्रोटेस्टेंट धर्म सुधार आन्दोलन की शुरूआत हुई। लूथर द्वारा न्यूटेस्टामेंट के अनुवाद की हजारों प्रतियाँ हफ्ते भर में बिक गई और तीन महीनें के अन्दर दूसरा संस्करण निकालना पड़ा। प्रिंट के प्रति कृतज्ञ लूथर ने कहा- ''मुद्रण ईश्वर की दी हुई महानतम् देन है सबसे बड़ा तोहफा।'' इस तरह छपाई से नए बौद्धिक माहौल का निर्माण हुआ एवं धर्मसुधार आन्दोलन के नए विचारों का फैलाव बड़ी तेजी से आम लोगों तक हुआ।

अब अपेक्षाकृत कम पढ़े लिखे लोग धर्म की अलग-अलग व्याख्याओं से परिचित हुए। कृषक से लेकर बुद्धिजीवी तक बाइबिल की नई-नई व्याख्या करने लगे। ईश्वर एवं सृष्टि के बारे में रोमन कैथोलिक चर्च की मान्यताओं के विपरित विचार आने से कैथोलिक चर्च क्रुद्ध हो गया और तथाकथित धर्मविरोधी विचारों को दबाने के लिए इन्क्वीजीशन शुरू किया। जिसके माध्यम से विरोधी विचाराधारा के प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं पर प्रतिबंध लगाया गया।

अलग-अलग सम्प्रदाय के चर्चों ने देहाती क्षेत्रों में स्कूल स्थापित कर गरीब तबके के लोगों को शिक्षित करना शुरू किया। जिसके कारण साक्षरता 60 से 80 प्रतिशत तक हो गई। अब गाँव के गरीब भी सस्ती किताबों, चैपबुक्स, पंचांग, विन्लियोथिक ब्ल्यू एवं इतिहास आदि की किताबों को पढना शुरू किए। 18वीं सदी के आरंभ से पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से मनोरंजक खबरे

परोसी जाने लगी। इस तरह वैज्ञानिक और दार्शनिक बाते भी आम जनता की पहुँच से बाहर नही रही । न्यूटन, टामसपेन, वाल्तेयर और रूसो की पुस्तकें भारी मात्रा में छपने और पढी जाने लगी। फलतः विज्ञान, तर्क और विवेकवाद के विचार लोकप्रिय साहित्य में भी जगह पाने लगे।

18 वीं सदी के मध्यतक मुद्रण क्रांति के फलस्वरूप प्रगति और ज्ञानोदय का प्रकाश यूरोप में फैल चुका था। लोगों में निरंकुश सत्ता से लड़ने हेतु नैतिक साहस का संचार होने लगा था। फलस्वरूप मुद्रण संस्कृति ने फ्रांसीसी क्रांति के लिए भी अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किया। क्रांतिकारी दार्शनिकों के लेखन ने परंपरा, अंधविश्वास और निरंकुशवाद की आलोचना पेश की। अब रीति –रिवाज की जगह विवेक और तर्क को कसौटी पर कसकर सत्य को परखा जाने लगा। चर्च की धार्मिक और राज्य की निरंकुश सता पर प्रहार किया जाने लगा। परंपरा पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को दुर्बल किया गया। अब लोगों में आलोचनात्मक, सवालिया और तार्किक दृष्टिकोण विकसित होने लगा।

छपाई ने वाद –विवाद की नई संस्कृति को जन्म दिया। पुराने और परंपरागत मूल्यों, संस्थाओं और कायदों पर आम लोगों के बीच मूल्यांकन शुरू हो गया। धर्म और आस्था को तार्किकता की कसौटी पर कसने से मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित होने लगे। इस तरह की नई सार्वजनिक दुनिया ने सामाजिक क्रांति को जन्म दिया। नए साहित्यों ने आमलोगों को निरंकुश राजशाही के प्रति आक्रोशित भी करने का प्रयास किया।

तकनीकी विकास :

18 वी सदी के अंत तक प्रेस धातु के बनने लगे थे। 19 वी सदी के मध्य तक न्यूयार्क के रिचर्ड एम०हो० ने शक्ति चालित बेलनाकार प्रेस को कारगर बना लिया था। इससे प्रतिघंटे 8000 ताव छापे जा सकते थे। सदी के अंत तक ऑफसेट प्रेस आ गया था, जिससे छः रंगों में छपाई एक

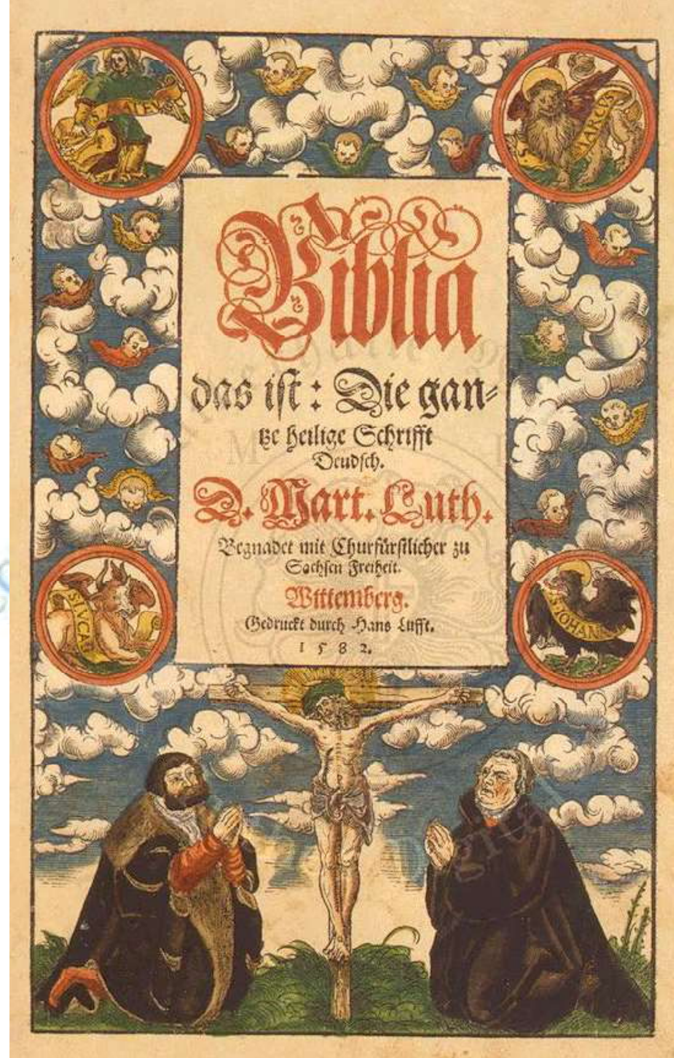


प्रिंटिंग प्रेस

साथ संभव थी। 20 वी सदी के प्रारंभ से बिजली से चलनेवाले छापेखाने ने तेजी से काम करना शुरू कर दिया। तकनीकी रूप से सुधार के चलते प्लेट की गुणवता बेहतर हुई। पेपर रील और रंगों के लिए फोटो विद्युतीय नियंत्रण भी काम में आने लगे। अब पुस्तकें सस्ती और रोचक कवर तथा पृष्ठ के साथ पाठकों के बीच पहुँचने लगी। इन पुस्तकों के पूर्व पाण्डुलिपियों के माध्यम से लोग ज्ञान अर्जन करते थे। यह आम छात्रों के लिए सुलभ नहीं थी क्योंकि यह काफी पुरानी, महँगी और दुर्लभ हुआ करती थी।

भारत में प्रेस का विकास :

भारत में छापाखाना के विकास के पहले हाथ से लिख कर पाण्डुलिपियों को तैयार करने की पुरानी एवं समृद्ध परम्परा थी। यहाँ संस्कृत, अरबी, एवं फारसी साहित्य की अनेकानेक तस्वीर युक्त सुलेखन कला से परिपूर्ण साहित्यों की रचनाएँ होती रहती थी। इन्हें मजबूती प्रदान करने के लिए सजिल्द भी किया जाता था। फिर भी पाण्डुलिपियाॅ काफी नाजुक और महॅगी होती थी। पाण्डुलिपियों की लिखावट कठिन होने एवं प्रचुरता से उपलब्ध नहीं होने के कारण यह आम जनता के पहुँच के बाहर थी। छापाखाना के आविष्कार ने भारत की भी तस्वीर बदल दी। प्रिटिंग प्रेस सबसे पहले भारत में पुर्तगाली धर्मप्रचारकों द्वारा 16 वीं सदी में लाया गया।



चित्रित पाण्डुलिपि

जेसुइट पुजारियों ने कोंकणी में कई पुस्तिकाए छापी। कैथोलिक पुजारियों ने 1579 में पहली तमिल पुस्तक छापी। डच -प्रोटेस्टेंटो ने कई किताबों को अनुदित करके भी छापा। भारत में समाचार-पत्रों का उदय 19 वी सदी की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यह न सिर्फ विचारों को तेजी से फैलानेवाला अनिवार्य सामाजिक संस्था बन गया बल्कि ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध भारतीयों की भावना को एक, रूप देने, उसकी नीतियों एवं शोषण के विरूद्ध जागृति लाने एवं देशप्रेम की भावना जागृत कर राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

समाचार पत्रों की स्थापना :


अगस्टक हिकी

आधुनिक भारतीय प्रेस का प्रारंभ 1766 में विलियम बोल्टस द्वारा एक समाचार पत्र के प्रकाशन से हुआ । परन्तु ईस्ट इंडिया कंपनी ने उनके कार्यो से नाखुश होकर उन्हें इंगलैड भेज दिया । 1780 में जे० के० हिक्की ने **'बंगाल गजट'** नामक समाचार पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया । हिक्की को भी कंपनी की आलोचना करने के अपराध में सजा भुगतनी पड़ी । हिक्की के प्रेस को कम्पनी ने जब्त कर लिया । नबम्वर 1780 में प्रकाशित **'इंडिया गजट'** दूसरा भारतीय पत्र था । 18 वीं सदी के अंत तक बंगाल में 'कलकत्ता कैरियर', 'एशियाटिक मिरर' तथा 'ओरियंटल स्टार', 'बंबई गजट' तथा 'हैराल्ड' और 'मद्रास कैरियर', 'मद्रास गजट' आदि समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे । ये सभी समाचार पत्र साप्ताहिक थे और अलग-अलग दिन प्रकाशित होते थे । इनकी विशेषता थी कि ये एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी न होकर पूरक थे । इनका क्षेत्र कम्पनी के अधिकारियों व्यापारियों तथा मिशनरियों तक ही सीमित था ।

भारतीयों द्वारा प्रकाशित प्रथम समाचारपत्र 1816 में गंगाघर भट्टाचार्य का साप्ताहिक 'बंगाल गजट' था । 1818 में ब्रिटिश व्यापारियों ने जैम्स सिल्क वर्किंधम नामक पत्रकार की सेवा प्राप्त की इसने बड़ी योग्यता से कलकत्ता जर्नल का सम्पादन करके लार्ड हेस्टिंग्स तथा जॉन एडम्स को परेशानी तथा उलझन में डाल दिया । बर्किंधम ने अपने पत्रकारिता के माध्यम से प्रेस को जनता



Amrita Bazar Patrika

LEUCODERMA
LEPROSY

ARAB-JEWISH SABRE-RATTLING TO FINISH EACH OTHER

ISRAEL TO CONTINUE FIGHT IF SOVEREIGNTY NOT RECOGNISED

ABDULLAH THREATENS ANNIHILATION

Hqs. Accuse Britain Of Arming Transjordan Forces During Truce

'DELICATE STATE OF AFFAIRS' IN BERLIN

Attlee Summons Cabinet To Discuss Issue: Soviet Withhold Food Supply

NO DISCUSSION ON FRANCO SPAIN

U. N. KASHMIR COMMISSION'S COMMUNICATION TO INDIA

Prime Minister Nehru & Advisers In Foreign Office Studying Points

Dewey Gets Party Nomination

Chiang's Forces Retake Kaifeng

'Sodepore'

SODEPORE COTTON MILLS LTD

NO FURTHER CLARIFICATION OF CHARGES ALLOWED

GANDHI MURDER TRIAL

Godse's Request To Separate Approver From Accused Granted

"MILL CLOTH AT FAIR PRICES"

BENGAL MILLOWNERS' ASSOCIATION,
2, CHURCH LANE, CALCUTTA.

अमृत बजार पत्रिका का मुख्यपृष्ठ

का प्रतिविम्व बनाया । इसने प्रेस को आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने, जाँच-पड़ताल करके समाचार देने तथा नेतृत्व प्रदान करने की ओर प्रवृत किया । अपने प्रगतिशील कार्यो से ये कम्पनी की आँखों में खटकने लगे । फलत: उन्हें 1823 में इंगलैड भेज दिया गया ।

1821 में बंगाली में 'संवाद कौमुदी' तथा 1822 में फारसी में प्रकाशित 'मिरातुल' अखवार के साथ प्रगतिशील राष्ट्रीय प्रवृति के समाचार-पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इन समाचार

पत्रों के संस्थापक राजा राम मोहन राय थे जिन्होंने इन्हें सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलन का हथियार भी बनाया । अंग्रेजी में ब्राह्मिनिकल मैगजीन भी राममोहन राय ने निकाला । 1822 में बंबई से गुजराती भाषा में 'दैनिक बम्बई' समाचार निकलने लगे । द्वारकानाथ टैगोर, प्रसन्न कुमार टैगोर तथा राममोहन राय के प्रयास से 1830 में बंगदत की स्थापना हुई । 1831 में 'जामें जमशेद', 1851 साल में 'गोफ्तार' तथा 'अखबारे सौदागर' का प्रकाशन आरम्भ हुआ ।


राजा राममोहन राय

अंग्रेज प्राशासकों ने भारतीय समाचार-पत्रों द्वारा तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक समस्यायों पर विचार-विमर्श का स्वागत नहीं किया और प्रेस को प्रतिबंधित करने का कुत्सित प्रयास किया ।

प्रेस की विशेषताएँ-समयानुसार बदलते परिप्रेक्ष्य में :

19 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जागरूकता के अभाव के कारण सामान्य जनता से लेकर जमीदारों तक की रूचि राजनीति में नहीं थी फलतः समाचार-पत्रों का वितरण कम था । पत्रकारिता घाटे का व्यापार था । समाचार-पत्रों का जनमत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होने के कारण अंग्रेज प्रशासक भी परवाह नहीं करते थे । फिर भी समाचार-पत्रों द्वारा न्यायिक निर्णयों में पक्षपात, धार्मिक हस्तक्षेप और प्रजातीय भेदभाव की आलोचना करने से धार्मिक एवं सामाजिक सुधार-आन्दोलन को बल मिला तथा भारतीय जनमत जागृत हुआ ।

1857 के विद्रोह के पश्चात् समाचार-पत्रों की प्रकृति का विभाजन प्रजातीय आधार पर किया जा सकता है । भारत में दो प्रकार के प्रेस थे-एग्लोइंडियन प्रेस और भारतीय प्रेस । एंग्लोंडंडियन प्रेस की प्रकृति और आकार विदेशी था । यह भारतीयों में **'फूट डालों और शासन**

करों' का पक्षघर था । यह दो सम्प्रदायों के बीच एकता के प्रयास का घोर आलोचक था । इसके द्वारा भारतीय नेताओं पर 'राज' के प्रति गैर वफादारी का सदैव आरोप लगाया जाता रहा । एंग्लों इंडियन प्रेस को विशेषाधिकार प्राप्त था । सरकारी खबरे एवं विज्ञापन इसी को दिया जाता था । सरकार के साथ इसका घनिष्ठ संबंध था ।

भारतीय प्रेस अंगरेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होते थे । 19 वीं तथा 20 वीं सदी में राममोहन राय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बालगंगाघर तिलक, दादाभाई नौरोजी, जवाहर लाल नेहरू, महात्मा गाँधी, मुहम्मद अली, मौलाना आजाद आदि ने भारतीय प्रेस को शक्तिशाली तथा प्रभावकारी बनाया ।

19 वी सदी में अंग्रजों द्वारा सम्पादित कई समाचार पत्र थे । जिसमें टाइम्स ऑफ इंडिया 1861 में, स्टेट्समैन 1875 में, इग्लिशमैन कलकत्ता से, मद्रासमेल मद्रास से, पायनियर 1865 में इलाहाबाद से और 1876 में सिविल और मिलिट्री गजट लाहौर से प्रकाशित होने लगे थे । इगलिश मैन सबसे रूदिवादी और प्रतिक्रियावादी समाचारपत्र था, जबकि स्टेट्स मैन उदार विचारों का पोषक था । यह सरकार और कांग्रेस दोनों की आलोचना करता था । पायनियर सरकार का समर्थक और भारतीयों का आलोचक था ।

भारतीयों द्वारा प्रकाशित एवं संपादित पत्र :

1858 में ईश्वरचन्द विद्यासागर ने 'सोम प्रकाश' का प्रकाशन साप्ताहिक के रूप में बंगाली में प्रारम्भ किया । यह राष्ट्रवादी विचारों से ओतप्रोत समाचार पत्र था । इसने नीलहे किसानों के हितों का जोरदार समर्थन किया । लार्ड लिटन ने इसकी गतिविधियों के कारण ही वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू किया था । कुछ वर्षो वाद 'हिन्दू पैट्रियट' को भी विद्यासागर ने ले लिया । 1874-75 के बीच इस पत्र के लंदन में संवाददाता सुरेन्द्रनाथ टैगोर और मनमोहन घोष ने 'इंडियन मिरर' का प्रकाशन शुरू किया । यह उत्तरी भारत का भारतीयों द्वारा संपादित एक मात्र दैनिक समाचार पत्र था । केशवचन्द्र सेन ने 'सुलभ समाचार' का बंगला में दैनिक प्रकाशन किया ।



ईश्वरचन्द विद्यासागर

मोतीलाल घोष के संपादन में 1868 से अग्रेजी-बंगला साप्ताहिक के रूप में अमृत बाजार पत्रिका का प्रेस के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है । 1878 में लिटन के वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट से बचने के लिए यह रातो-रात अंगरेजी में प्रकाशित होने लगा ।

जोगेन्द्र नाथ बोस के सम्पादन (1881) में बंगवासी शुरू हुआ जिसकी वितरण संख्या 8500 तक पहुँच गई । सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने बंगाली को राष्ट्रवादी एवं राजनीतिक विचारधारा का प्रभावशाली पत्र बनाने में सफलता प्राप्त की । कलकत्ता से हिन्दी बंगवासी, आर्यावर्त, उचितवक्ता, भारत मित्र आदि का प्रकाशन शुरू हुआ । कालाकांकड (उत्तर प्रदेश) से हिन्दी में हिन्दोस्तान का प्रकाशन शुरू हुआ, जो उदार विचारों का पोषक था ।

भारतेन्दु हरिश्चंद का हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है । 1867 में इनके संपादन में वनारस से 'कविवचन सुधा' प्रकाशित होने लगा । इसकी संपादकीय टिप्पणियाँ राजनीति-सामाजिक विषयों पर होती थी जो राष्ट्रवादी विचारों को सशक्त करने का काम कर रही थी । भारतेन्दु की 1872 में प्रकाशित मासिक पत्रिका हरिश्चंद्र भी देश प्रेम और समाज सुधार से अनुप्राणित थी । राष्ट्रवादी विचारों को संपोषित करने वाली पत्रिकाओं में बालकृष्ण भट्ट का हिन्दी प्रदीप रामकृष्ण वर्मा के 'भारत जीवन' का महत्वपूर्ण स्थान है। 1899 में अगरेजी मासिक 'हिन्दुस्तान रिव्यू' की स्थापना सच्चिदानंद सिन्हा ने की, जिसका दृष्कोण राजनीतिक था ।

धीरे-धीरे 19 वीं सदी के अंतिम दो दशकों में राष्ट्रीय आन्दोलन का फलक विस्तृत हो रहा था । फलत: राष्ट्रीय आन्दोलन की नई लहर एवं कांग्रेस की स्थापना ने प्रेस के विकास एवं समाचार पत्रों के प्रसार पर व्यापक प्रभाव डाले। बाल गंगाघर तिलक के संपादन में 1881 में बंबई से अंग्रेजी भाषा में मराठा और मराठी में केसरी की शुरूआत हुई । दोनों पत्र उग्रराष्ट्रवादी विचारों से प्रभावित थे । इनका जनमानस पर व्यापक प्रभाव था । 1862 में एम० जी० रणाडे ने इन्दु प्रकाश तथा फिरोजशाह मेहता ने 1913 में बाम्बे कॉनिकल का प्रकाश प्रारंभ किया ।

बंगाल में उग्रराष्ट्रवाद को फैलाने का काम अरविद घोष और वारींद्र घोष ने जुगांतर तथा बंदेमातरम् के माध्यम से किया ।

मद्रास से 1878 में साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित होनेवाला हिन्दू 1881 में दैनिक के रूप में परिवर्तित हो गए । इस पत्र का दृष्टिकोण उदार था ।

समाचार पत्रों को राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रचार के हथियार के रूप में डा० एनीवेसेन्ट ने भी इस्तेमाल किया । इन्होंने मद्रास स्टैंडर्ड को अपने संचालन में लेकर न्यू इंडिया का नाम देकर होमरूल का नारा जन-जन तक पहुँचाया ।

महात्मा गाँधी न केवल कुशल राजनीतिज्ञ ही थे बल्कि महान् पत्रकार भी थे । गाँधी जी ने 'यंग इंडिया' तथा 'हरिजन' के माध्यम से अपने विचारों एवं राष्ट्रवादी आन्दोलन का प्रचार किया । सरकार को अपने राजनैतिक दर्शन एवं राजनीतिक कार्यक्रमों से अवगत कराया तथा भारत के आवाम् को एक बड़े आन्दोलन के लिए प्रशिक्षित किया । भारतीय प्रेस गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर निर्भिक होने लगा । गाँधी के सीधे एवं सरल लेख से आम जनता के साथ-साथ क्षेत्रीय पत्रकारिता को भी राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ने के लिए प्रोत्साहन मिला ।

समाचार पत्रों ने न केवल राष्ट्रवादी आन्दोलन को एवं नई दिशा दी अपितु भारत में शिक्षा के प्रोत्साहन, आर्थिक विकास एवं औद्योगिकरण तथा श्रम आन्दोलन को भी प्रोत्साहित करने का कार्य किया ।

मोतीलाल नेहरू ने १९१९ में इडिपेंडेंस, शिव प्रसाद गुप्त ने हिन्दी दैनिक आज, के0 एम0 पन्निकर ने १९२२ में हिन्दुस्तान टाइम्स का सम्पादन प्रारंभ किया । बाद में हिन्दुस्तान टाइम्स का सम्पादन कार्य मदनमोहन मालवीय के हाथ में आया और अतत: 1927 में इस पत्र को जी० डी० विडला ने अपने हाथों में ले लिया। समाजवादी-साम्यवादी विचारो के फैलाव के परिणामस्वरूप मराठी साप्ताहिक क्रांति, वर्कस एण्ड पीजेंट्स पार्टी ऑफ इंडिया का प्रतिनिधित्व कर रहा था । अंग्रेजी साप्ताहिक न्यू स्पार्क, कांग्रेस सोशलिस्ट क्रमश: मार्क्सवादी



INSURANCE

The Bombay Chronicle

INSURANCE

VOL. XVIII NO. 83 — BOMBAY MONDAY APRIL — PRICE ONE ANNA

MAHATMA BREAKS SALT LAW.

His Son And Lieutenants Arrested.

MAHARASHTRA VOLUNTEERS BEGIN CAMPAIGN AT JUHU.

GANDHIJI'S APPEAL FOR NATION-WIDE MASS CIVIL DISOBEDIENCE

Rigorous Social Boycott Of Officials In Dandi

BONFIRE OF FOREIGN CLOTHES AT JUHU

GANDHI'S SON ARRESTED

MAHATMA'S MESSAGE TO AMERICAN PEOPLE

Mere Sympathy Not Enough

SUPPORT INDIAN INDEPENDENCE

Non-Violence, India's Message To The World.

MAHARASHTRA VOLUNTEERS BREAK SALT LAWS

तत्कालीन समाचार पत्र में गाँधी जी

एवं समाजवादी विचारों के पोषक थे । एम० एन० राय ने अंग्रेजी साप्ताहिक **इंडिपेंडेन्ट** 1930 में, एस० सदानंद के संपादन में दी फ्री प्रेस जरनल को शुरू किया गया। मद्रास में स्वराज्य तथा गुजराती में नवजीवन का प्रकाशन भी शुरू हुआ ।

1910–20 के बीच उर्दू पत्रकारिता का भी विकास हुआ । मौलाना आजाद के संपादन में 1912 में 'अल हिलाल' तथा 1913 में 'अल बिलाग' कलकत्ता से निकलना प्रारंभ हुआ । मोहम्मद अली ने अगरेजी में 'कामरेड' तथा उर्दू में 'हमदर्द' का प्रकाशन किया । 1910 में गणेश शंकर विधार्थी के संपादन में 'प्रताप' का प्रकाशन कानपुर से प्रारंभ हुआ । यह उग्र राष्ट्रवाद तथा किसान–मजदूर का जवरदस्त समर्थक था । 1913 में 'गदर' का प्रकाशन हरदयाल के द्वारा सैन फ्रांसिस्को से हुआ । यह धर्मनिरपेक्ष और लोकतंत्रिक भावनाओं से ओतप्रोत समाचार–पत्र था । जनवरी 1914 से पंजावी में भी इसका प्रकाशन प्रारंभ हुआ । विदेशों में रह रहे भारतीयों के मन में देशप्रेम का भाव जगाने हेतु यह पत्र काफी सक्रिय रहा ।

जहाँ तक उर्दू प्रेस का राष्ट्रवादी आन्दोलन से संबंध की बात है 1857 की क्रांति के दौरान एवं इसके पश्चात यह अंग्रेजी राज की घोर आलोचक थी । लेकिन राष्ट्रीय राजनीति में सर सैयद अहमद खाँ के बढ़ते प्रभाव ने इसे कांग्रेस समर्थित राष्ट्रीय आन्दोलन एवं अंग्रेजी राज से मुसलमानों के संबंधों की नई व्यवख्या करने के लिए प्रेरित किया । हालाकि उर्दू प्रेस ने सामान्य रूप से सर सैयद अहमद के विचारों से सहमति प्रकट नहीं की । मौलाना आजाद, मोहम्मद अली और अब्दुल वारी साहेब आदि के संपादन में प्रकाशित होने वाले पत्र पूर्णतः राष्ट्रवादी भावनाओं से ओत प्रोत थे। इनमें से कई पत्रों के ग्राहक सर सैयद के अलीगढ़ जर्नल से कही अधिक थे।

प्रेस का राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका तथा प्रभाव

प्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन के हर पक्ष–चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक हो या सांस्कृतिक–सबको प्रेस ने प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया । प्रेस के माध्यम से राष्ट्रीय नेताओं ने अंग्रेजी राज की शोषणकारी नीतियों का पर्दाफाश करते हुए जनजागरण फैलाने का कार्य किया । विदेशी सत्ता से त्रस्त जनता को सन्मार्ग दिखाने एवं साम्राज्यवाद के विरोध में निर्भिक स्वर उठाने का कार्य प्रेस के माध्यम से ही किया गया ।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की स्थापना से पहले समाचार-पत्र देश में लोकमत का प्रतिनिधित्व कर रहे थे । देशभक्तों ने लाभ या व्यवसायिक दृष्टि से पत्रकारिता को नहीं अपनाया, बल्कि इसे मिशन के रूप में अपनाया । समाचार-पत्रों ने राजनीतिक शिक्षा देने का दायित्व अपने उपर ले लिया । अधिकांश समाचार-पत्रों का रूख कांग्रेस की याचना वादी नीतियों से भिन्न थी। राजनीतिक समस्याओं में भाग लेने के लिए समाचार पत्र जनता को प्रोत्साहित करते थे । पूरे वर्ष समाचार पत्रों में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में पारित प्रस्तावों की चर्चा होती रहती थी । इससे राष्ट्रीय चेतना का प्रचार द्रुत गति से होने लगा । अंग्रेजों द्वारा पक्षपात की नीति की आलोचना भारतेन्दु ने इन शब्दों में की, ''क्या कारण है कि हिन्दू मजिस्ट्रेट अंग्रेज को दण्ड न दे सके पर अंग्रेज हिन्दू को? केवल पक्षपात!

नई शिक्षा नीति के प्रति व्यापक असंतोष को सरकार के समक्ष पहुँचाने का कार्य प्रेस ने ही किया । अंग्रेजों द्वारा भारत का जो आर्थिक शोषण हो रहा था इसके विरूद्ध भी प्रेस ने आवाज उठाई । आर्थिक दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करते हुए एक पत्र ने लिखा, कि, ''वाणिज्य, व्यापार, टिकस पर टिकस और मोटा वेतन ग्रहण करके राजपुरूषगण यहाँ से सब रूपया विदेश ले गए हैं। यहाँ इतना रूपया नहीं है कि देश सामान्य कार्यो का खर्च संभाल सके । पर इंगलैड के राजमंत्री भारत के गवर्नर जनरल से पाँच गुणा वेतन लेते है .... परन्तु भारत वर्ष कामधेनु तो नहीं है, यह अब अंग्रजों को जान लेना होगा ।'' 'भारत मित्र' ने भारत से चावल निर्यात का विरोध किया । भारत की शोचनीय आर्थिक दशा पर समाचार पत्र के विचारो में मतभेद था । भारतीय समाचार पत्र इस दुर्दशा के लिए अंग्रेजो की शेषणकारी नीति को उत्तरदायी मानते थे जबकि एंग्लो इंडियन प्रेस भारत को इस दुर्दशा से निकालने में अंग्रेजी राज को ही सक्षम मानते थे । अधिकांश समाचार पत्रों की नजर में भारत की वास्तविक समस्या राजनीति से कहीं अधिक आर्थिक थी । समाचार पत्रों द्वारा भारत से धन के निष्कासन को रोकने का आहवान किया गया । गर्मियों में राजधानी शिमला स्थानान्तरित करने की भी आलोचना समाचार पत्रों ने की। स्वदेशी का भी समर्थन इनके द्वारा किया गया । जैसा अखबार ने लिखा कि स्वदेशी हिन्दूओं से अधिक मुसलमानों के लिए फायदेमंद होगा ।

सामाजिक सुधार के क्षेत्र में, प्रेस ने सामाजिक रूढ़ियों, रीति रिवाजों, अंधविश्वास तथा अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव को लेकर लगातार आलोचनात्मक लेख प्रकाशित किए । राम मोहन राय, विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन आदि जैसे समाजसुधारकों ने जनमत हेतु प्रेस को अपना हथियार बनाया ।

भारतीय नरेशों के प्रति सम्पादकों ने सदैव सकारात्मक रूख अपनाया। जब भी सर्वोच्च सत्ता द्वारा इनके अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता था, प्रेस उसकी आलोचना करते थे । प्रेस नरेशों के नैतिक उत्थान तथा प्रजा के प्रति उनके कर्त्तव्यों के बारे में उन्हें जागरूक भी करता था। कूच बिहार, पटियाला, रामपुर के शासकों द्वारा प्रजा हित की अवहेलना कर मनोरंजन और व्यसन में संलिप्त रहने पर समाचार पत्रों ने कड़ी आलोचना की। कुछ समाचार पत्र ने अपव्यय के कारण लार्ड कर्जन के उन कदमों का स्वागत किया जिसके द्वारा नरेशों पर विदेश जाने के बारे में प्रतिबंध लगाया था ।

प्रेस भारत की विदेश नीति की भी खूब समीक्षा करती थी । वर्मा युद्ध, सिक्किम तथा तिब्बत के प्रति नीति, अफगनिस्तान युद्ध, तुर्की के प्रति नीति, दक्षिण अफ्रीका की घटनाओं (बोअर युद्ध) रूस-जापान युद्ध का वर्णन तथा सरकार की नीति की आलोचना प्रेस ने खुलेआम की । प्रेस ने ग्लैडस्टन की वर्मा संबंधी नीतियों की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया कि युद्ध इंगलैड के साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए लडा गया था न कि भारतीयों की सुरक्षा के लिए ।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी के प्रयासों का भारतीय प्रेस में उल्लेख किया गया । शुरू में अंग्रजों के विरूद्ध बोअर विजय से भी भारतीय प्रेस खुश थे। रूस-जापान युद्ध (1904-5) में रूस की पराजय को समाचार पत्रों ने आत्मविश्वास और राष्ट्रवाद बढ़ाने के अवसर के रूप में देखा। रूस का मध्य एशिया में बढ़ते प्रभाव के कारण अंग्रेज काफी सहमे हुए थे । ऐसी स्थिति में रूसी प्रशासन की भारतीय प्रेस द्वारा प्रशंसा कर अंग्रेजों पर दवाव बनाने का प्रयास किया जा रहा था ।

तुर्की के प्रति भारतीय मुसलमानों की भावनाओं को सरकार एवं जनता के समक्ष रखने में प्रेस ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । हालाकि सर सैयद अहमद खाँ सहित कुछ लोगों के विचार भिन्न थे । अरमानिया एवं वाल्कन (1912) मुद्दे पर पर मुस्लिम प्रेस जमीन्दार, अलहिलाल, तौहीद, हमदर्द, कामरेड आदि ने अपनी शक्ति का पूरा प्रयोग करते हुए संपूर्ण देश में अंगरेजों के विरूद्ध राष्ट्रीय भावना जागृत कर दी ।

देश के राष्ट्रीय आन्दोलन को नई दिशा देने एवं राष्ट्रनिर्माण में भी प्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका रही । प्रेस ने सरकार की नीतियों की समीक्षा तथा जनमत का निर्माण कर लोकतांत्रिक तरीके से उसके विरोध का मार्ग प्रशस्त किया। सम्पूर्ण देश के लोगों के बीच सामाजिक कुरीतियों को दूर करने, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का कार्य भी किया गया। विदेशी

राजनीतिक घटनाओं से स्वतंत्रता आन्दोलन को अनुप्रमाणित करने का कार्य भी प्रेस ने किया। लिटन द्वारा वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट के माध्यम से समाचार पत्रों पर प्रतिवंध ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन एवं जनमानस को उद्वेलित किया। लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल के विभाजन ने तो भारतीय प्रेस एवं राष्ट्रीय आन्दोलन, दोनों को नया जीवन प्रदान किया।

इस काल में हिन्दू-मुस्लिम दोनों प्रेस ने इसाइयों के विरूद्ध हिन्दूओं और मुसलमानों के बीच एकता लाने का प्रयास किया। निजाम-उल-मुल्क तथा अखबारे आम ने इसाई सरकार के विरूद्ध एक संगठित जनमत बनाने का आह्वान किया। मुस्लिम प्रेस ने साम्प्रदायिक दंगों के प्रति भी तार्किक दृष्टिकोण अपनाया तथा सरकार द्वारा उकसानेवाली नीतियों को बिना सोचे-समझे स्वीकार नहीं किया। प्रेस ने गंगा-जमुनी संस्कृति का पक्ष लेते हुए साम्प्रदायिक एकता बनाये रखने में भी प्रशंसनीय भूमिका निभाई।

कांग्रेस में वैचारिक मतभेद के फलस्वरूप सूरत फूट (1907) के पश्चात नरम दल के नेताओं ने अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए प्रेस का सहारा लिया। दूसरी तरफ बाल-लाल-पाल के नेतृत्व में अतिवादी राष्ट्रवाद के विचारों को भी फैलाने का कार्य प्रेस ने किया दोनों पक्ष के महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नेता कई समाचार पत्रों के संस्थापक तथा संपादक भी थे। फिरोजशाह मेहता, तिलक, ऐनी वेसेंट, गांधी सरीखे महान नेता संपादकीय के द्वारा समाचार पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए जनमत जुटाने का प्रयास किया। भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों ने आम जनता से भावनात्मक संबंध स्थापित कर राष्ट्रीय आन्दोलन के पक्ष में उन्हें तैयार किया। इस प्रकार भारतीय प्रेस ने राष्ट्रीयता के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसने संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बांधने, विभिन्न समुदायों की बीच की दूरी समाप्त करने एवं शोषण के विरूद्ध जनमत तैयार करने का कार्य कर राष्ट्रीय आन्दोलन एवं राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र किया।

प्रेस के विरूद्ध प्रतिबंध :

भारत में समाचार पत्रों के प्रकाशन के साथ ही सरकारी नीतियों की समीक्षा भी शुरू हो गई थी। प्रारम्भ में कंपनी शासन के दौरान समाचार पत्रों के लिए आदर्श आचार संहिता नहीं थी। कंपनी की स्वेच्छा पर निर्भर था कि समाचार पत्र या संपादक के प्रति वह अपने अनुकूल कार्य न करने पर कौन सा दण्ड निर्धारित करे। इन परिस्थितियों में समाचार पत्र कम्पनी की दया पर निर्भर थे। कम्पनी कभी भी पूर्व पर्वेक्षण की नीति के कारण मनोकुल नहीं रहने पर संपादक को

वापस इंगलैण्ड भेज देती थी। लेकिन वह भारतीय संपादकों के साथ ऐसा नहीं कर सकती थी। अत: समाचार पत्रों को नियंत्रित करने के लिए कई अधिनियम बनाए गए।

(१) १७९९ का समाचार पत्रों का पर्त्रेक्षण अधिनियम : लार्ड वेल्जली ने फ्रांस के आक्रमण के भय से समाचार पत्रों पर सेन्सर बैठा दिया। इस अधिनियम के अनुसार समाचार पत्र को संपादक, मुद्रक एवं स्वामी का नाम स्पष्ट रूप से छापना पड़ता था। प्रकाशक को प्रकाशित किए जानेवाले सभी तत्त्वों को सरकार के सचिव के सम्मुख पूर्व–पत्रेक्षण के लिए भेजना होता था। 1807 में इस अधिनियम को पत्रिकाओं, पॅम्फलेट तथा पुस्तकों पर भी लागू कर दिया गया। हेस्टिंग्स के समय कुछ ढील दी गई और 1818 तक पूर्व पत्रेक्षण बन्द कर दिया गया।

(२) १८२३ के अनुज्ञप्ति नियम (The Licencing Regulation of 1823) : 1823 में जान एडम्स गवर्नर जनरल बनते ही अपने प्रतिक्रियावादी विचारों को इस अधिनियम में व्यक्त किया। इसके अनुसार–मुद्रणालय स्थापित करने के लिए अनुज्ञप्ति लेनी आवश्यक थी। बिना अनुज्ञप्ति 400 रूपये का दण्ड अथवा कारावास की सजा का प्रावधान था। दण्ड नायक बिना अनुमति मुद्रणालय जब्त कर सकता था। गवर्नर जनरल को अनुज्ञप्ति रद्द करने का भी अधिकार था। इस नियम के आलोक में राजा राम मोहन राय के मिरात-उल-अखबार को बन्द होना पड़ा तथा जे० एस० वर्किंघम को इंगलैण्ड में उद्वासित होना पड़ा।

(३) भारतीय समाचार पत्रों की स्वतंत्रता १८३५ (The Liberation of Indian Press) : विलियम वेंटिक समाचार पत्रों के प्रति उदार था लेकिन 1823 के नियम को रद्द कर चार्ल्स मेटकाफ भारतीय समाचार पत्रों के 'मुक्ति दाता' के रूप में विभूषित हुआ। मैकाले का विचार था कि आपातकाल में सरकार के पास अनन्त शक्ति है तो शांतिकाल में ऐसे नियमों की कोई आवश्यकता नहीं है। नए अधिनियम के तहत प्रकाशक प्रकाशन स्थान की सूचना देकर सुगमता से कार्य कर सकता था। 1856 तक यह कानून चलता रहा फलत: देश में समाचार पत्रों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई।

(४) १८५७ का अनुज्ञप्ति अधिनियम (Licencing Act fo 1857) : 1857 के अधिनियम के अनुसार अनुज्ञप्ति को पुन: लागू कर दिया गया। यह सिर्फ एकवर्ष के लिए संकटकालीन व्यवस्था के रूप में लागू किया गया था।

(५) १८६७ का पंजीकरण अधिनियम (Registration Act of 1867) : इस अधि नियम के तहत मेटकाफ के अधिनियम को परिवर्तित किया गया। जिसका उद्देश्य मुद्रणालयों को

नियमित करना था। प्रत्येक पुस्तक तथा समाचार पत्र पर मुद्रक, प्रकाशक तथा मुद्रण स्थान का नाम होना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त एक महीने के भीतर प्रकाशक को पुस्तक की एक प्रति सरकार को देनी भी थी। बहावी विद्रोह के कारण राजद्रोह फैलानेवाले को अंशकालिक अथवा पूर्णकालिक सजा का भी प्रावधान किया गया।

(६) देशी भाषा समाचार-पत्र अधिनियम वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट १८७८ : 1857 के पश्चात समाचार-पत्र भी शासक और शासित के बीच में बँट गए। अंग्रेजी समाचार पत्र सरकार का सदैव समर्थन करते थे। लेकिन देशी समाचार पत्रों ने मुखर होकर साम्राज्यवादी नीतियों के विरूद्ध राष्ट्रवादी भावना को उत्पन्न किया। अकाल और सरकारी अपव्यय की खबरों ने जनता के बीच भारी असंतोष को उत्पन्न किया। लिटन यह समझता था कि इस असंतोष का कारण 'मैकाले और मेटकाफ' की नीतियाँ हैं। फलतः इसने 1878 के देशी भाषा समाचार-पत्र अधि नियम के माध्यम से समाचार पत्रों को अधिक नियंत्रण में लाने का प्रयत्न किया। इस अधि नियम के माध्यम से जिला दण्डनायक (Bond) बंधनपत्र एवं जमानत पर किसी समाचार पत्र को प्रकाशित करने की आज्ञा इस शर्त पर दे कि वे ताज (Crown) के विरूद्ध भडकाने वाले कोई समाचार नहीं छापेंगे। इसमें दण्ड नायक का निर्णय अंतिम होगा। अगर कोई समाचार पत्र इस अधिनियम से बचना चाहे तो अपने पत्र की इक्ष्य प्रति (Proof) सरकारी प्रर्वेक्षण को पहले से देनी होगी।



लार्ड लिटन

यह अधिनियम देशी भाषा समाचार पत्रों के लिए मुँह बन्द करने वाला एवं भेदभाव पूर्ण साबित हुआ। यह भारतीय समाचार पत्रों की भाषा और भाव को नियंत्रित करने में सफल रहा। नए भारत सचिव लार्ड क्रेनवुक ने प्रर्वेक्षण की धारा को सितम्बर 1878 में हटा दिया। इसके बदले प्रेस आयुक्त को नियुक्त किया गया जिसका कार्य सच्चे और यथार्थ समाचार पत्र प्रेषित करना था।

लार्ड रिपन जो सच्चा उदारवादी शासक था ने इस अधिनियम को रद्द कर दिया। लेकिन 1898 के अधिनियम के द्वारा व्यवस्था की गई कि वैसे कथन जो सेना में असंतोष फैलाए तथा राज्य के विरूद्ध कार्य करने की प्रेरणा दे, को दण्डित किया जा सके। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट ने राष्ट्रीयता की भावना एवं जन असंतोष में उबाल ही लाने का कार्य किया।

(७) १९०८ का समाचार पत्र अधिनियम (The News Paper Act 1908) : लार्ड कर्जन की नीतियों के विरूद्ध उग्रराष्ट्रवाद की भावनाएँ भडक रही थी। इन्हें दबाने के लिए 1908 का News Paper Act पास किया गया। इसके अनुसार किसी समाचार पत्र की ऐसी सामग्री जिससे हिंसा अथवा हत्या की प्रेरणा मिले, उसकी संपति को सरकार जब्त कर सकती थी। स्थानीय सरकार पंजीकरण अधिनियम 1867 के तहत किसी प्रकाशक की घोषणा को रद्द कर सकती थी। प्रकाशकों को मुद्रणालय जब्त होने के 15 दिन के भीतर उच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति थी।

(८) १९१० का भारतीय समाचार पत्र अधिनियम (The Indian Press Act 1910) : इस अधिनियम ने लार्ड लिटन के 1878 के एक्ट के सभी घिनौने लक्षण को पुनर्जीवित कर दिया। सरकार के जमानत जब्त करने तथा पंजीकरण रद्द करने का अधिकार था। पुनः आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशित करने पर मुद्राणालय और पुस्तक की सभी प्रतियों को जब्त करने का अधिकार मिल गया। प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में भारत सुरक्षा नियम के अन्तर्गत राजनैतिक आन्दोलन तथा स्वतंत्र जन आलोचना की आज्ञा नहीं थी। 1921 में तेज बहादुर सप्रु की अध्यक्षता वाली प्रेस कमिटि की सिफारिश पर 1908 और 1910 के अधिनियम को रद्द कर दिया गया।

(९) १९३१ का भारतीय समाचार पत्र (संकटकालीन शक्तियाँ) अधिनियम : इसके अनुसार 1910 के सारे आदेश पुनः लागू कर दिए गए। इस अधिनियम द्वारा प्रत्यक्ष–परोक्ष किसी रूप से अपराध की प्रेरणा देने पर कड़ा दण्ड का प्रावधान किया गया। 1932 में प्रभुसत्ता को हानि पहुँचानेवाली सभी गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए यह अधिनियम लाया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान पूर्व पत्रेक्षण को पुनः लागू किया गया। एक समय राष्ट्रीय कांग्रेस के विषय में समाचार प्रकाशित करना भी अवैध घोषित किया गया। इन सभी शक्तियों को 1945 में समाप्त कर दी गई।

(१०) समाचार पत्र जाँच समिति (Press Examination Committee) : मार्च 1947 में गठित यह समिति संविधान सभा में स्पष्ट किए गए मौलिक अधिकारों के आलोक में सिफारिश की कि 1931 के समाचार पत्र अधिनियम, देशी राज्य अधिनियम (असंतोष के विरूद्ध एकता), 1934 के देशी राज्य रक्षा अधिनियम को रद्द किया जाए।

(११) १९५१ का समाचार पत्र (आपत्तिजनक विषय) अधिनियम (The Press objectionable Matters Act 1951) : 1951 में सरकार को संविधान के अनुच्छेद 19 (2) में संशोधन और समाचार पत्र अधिनियम पारित करने की आवश्यकता पड़ी। इसके माध्यम से अब तक के सभी अधिनियमों को रद्द कर दिया गया। नए कानून के माध्यम से सरकार मुद्रणालय को आपत्तिजनक विषय प्रकाशित करने पर जब्त कर सकती थी। प्रकाशकों को जूरी द्वारा परीक्षा मांगने का अधिकार दे दिया गया। यह अधिनियम 1956 तक लागू रहा।

कई पत्रकार संगठनों द्वारा इसका विरोध करने पर सरकार ने न्यायाधीश जी०एस० राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में एक प्रेस कमीशन नियुक्त किया। इसने 1954 में अखिल भारतीय समाचार पत्र परिषद् के गठन सहित कई सुझाव दिए जो सरकार द्वार मान लिए गए।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रेस की भूमिका : वैश्विक स्तर पर मुद्रण अपने आदिकाल से भारत में स्वाधीनता आन्दोलन तक भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से गुजरते हुए आज अपनी उपादेयता (महत्व या उपयोगिता) के कारण ऐसी स्थिति में पहुँच गया है कि इससे ज्ञान जगत् की हर गतिविधियाँ प्रभावित हो रही है। आज पत्रकारिता साहित्य, मनोरंजन, ज्ञान-विज्ञान प्रशासन, राजनीति आदि को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है।

आज के इस आधुनिक दौर में प्रेस, साहित्य और समाज की समृद्ध चेतना की धरोहर है और पत्र-पत्रिकाएँ दैनिक गतिशीलता की लेखा है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य भले ही व्यावसायिक रहा हो किन्तु इसने साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरूचि जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। पत्र-पत्रिकाओं ने दिन-प्रतिदिन घटनेवाली घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में नई और सहज शब्दावली का प्रयोग करते हुए भाषाशास्त्र के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रेस ने समाज में नवचेतना पैदा कर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं दैनिक जीवन में क्रांति का सूत्रपात किया। प्रेस ने सदैव सामाजिक बुराइयों दहेज प्रथा, विधवा विवाह, बालिका-बध, बाल-विवाह जैसे मुद्दों को उठाकर समाज के कुप्रथाओं को दूर करने में मदद की तथा व्याप्त अंध विश्वास को दूर करने का प्रयास किया।

आज के परिवर्तनकारी युग में प्रेस स्वस्थ-मनोविनोद का भी स्रोत बन गया है। आज की भाग-दौड़ एवं तनावपूर्ण जीवन शैली में भी प्रेस सिनेमा से लेकर खेलकूद से संबधित समाचार को प्रमुखता से छापकर पाठकों का मनोरंजन करती है। प्रेस पारस्परिक गपशप, हास-परिहास, व्यंग-विनोद, प्रश्नोत्तर, फूलझड़ी, कहकहें से लेकर काँव-काँव के माध्यम से समाज को सूक्ष्म संदेश तो देती ही है, मनोरंजन भी करती है।

आज प्रेस समाज में रचनात्मकता का प्रतीक भी बनता जा रहा है। यह समाज को नित्यप्रति की उपलब्धियों, वैज्ञानिक अनुसंधानों वैज्ञानिक उपकरणों एवं साधनों से परिचित कराता है। पत्रकार, विज्ञान के वरदान और अभिशाप को घटनाओं के माध्यम से समाज के सामने लाते है। ताकि सामान्य लोग भी विश्व कल्याण के संदर्भ में सोच सके।

आज प्रेस लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करने हेतु सजग प्रहरी के रूप में हमारे सामने खड़ा है। यह वर्तमान राजनीति को सकारात्मक दिशा प्रदान करने के साथ-साथ भ्रष्टतंत्र पर करार प्रहार करने का भी प्रयास करता है।

इस तरह हम देखते हैं कि प्रेस अपने विकास के प्रथम चरण से आज भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से गुजरते हुए समस्त परम्पराओं एवं मूल्यों की रक्षक तथा वर्तमान सामाजिक, वैज्ञानिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को समझने एवं जानने के मुख्य श्रोत के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।



क्रिकेट खेलते हुए भारतीय टीम

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. महात्मा गाँधी ने किस पत्र का संपादन किया ?

   (क) कामनवील (ख) यंग इंडिया

   (ग) बंगाली (घ) बिहारी

2. किस पत्र ने रातो-रात वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट से बचने के लिए अपनी भाषा बदल दी ?

   (क) हरिजन (ख) भारत मित्र

   (ग) अमृतबाजर पत्रिका (घ) हिन्दुस्तान रिव्यू

3. 13वीं सदी में किसने ब्लाक प्रिंटिंग के नमूने यूरोप में पहुँचाए ?

   (क) मार्कोपोलो (ख) निकितिन

   (ग) इत्सिंग (घ) मेगास्थनीज

4. गुटेनवर्ग का जन्म किस देश में हुआ था?

   (क) अमेरिका (ख) जर्मनी

   (ग) जापान (घ) इंगलैंड

5. गुटेनवर्ग ने सर्वप्रथम किस पुस्तक की छपाई की?

   (क) कुरान (ख) गीता

   (ग) हदीस (घ) बाइबिल

6. इंगलैंड में मुद्रणकला को पहुँचाने वाला कौन था ?

   (क) हैमिल्टन (ख) कैक्सटन

   (ग) एडिसन (घ) स्मिथ

7. किसने कहा ''मुद्रण ईश्वर की दी हुई महानतम् देन है, सबसे बड़ा तोहफा'?

   (क) महात्मा गांधी (ख) मार्टिन लूथर

   (ग) मुहम्मद पैगम्बर (घ) ईसा मसीह

8. रूसो कहाँ का दार्शनिक था ?

(क) फ्रांस (ख) रूस

(ग) अमेरिका (घ) इंगलैंड

9. विश्व में सर्वप्रथम मुद्रण की शुरूआत कहाँ हुई?

(क) भारत (ख) जापान

(ग) चीन (घ) अमेरिका

10. किस देश की सिविल सेवा परीक्षा ने मुद्रित पुस्तकों (सामग्रियों) की माँग बढ़ाई?

(क) मिश्र (ख) भारत

(ग) चीन (घ) जापान

रिक्त स्थानों को भरें :

1. 1904-05 के रूस-जापन युद्ध में .... की पराजय हुई।
2. फिरोज शाह मेहता ने .... का संपादन किया।
3. वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट .... ई० में पास किया गया।
4. भारतीय समाचार पत्रों के मुक्तिदाता के रूप में .... को विभूषित किया गया।
5. अल-हिलाल का सम्पादन .... ने किया।

सुमेलित करें :

1.	जे० के० हिक्की	(क)	संवाद कौमुदी
2.	राम मोहन राय	(ख)	बंगाली
3.	बाल गंगाधर तिलक	(ग)	बंगाल गजट
4.	केशवचन्द्र सेन	(घ)	मराठा
5.	सुरेन्द्र नाथ बनर्जी	(ङ)	सुलभ समाचार

१. **निम्नांकित के बारे में २० शब्दों में लिखों :**

(क) छापाखाना
(ख) गुटेनवर्ग
(ग) बाइबिल
(घ) रेशम मार्ग
(ङ) मराठा
(च) यंग इंडिया
(छ) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट
(ज) सर सैयद अहमद
(झ) प्रोटेस्टेन्ट वाद
(ञ) माटिन लूथर

२. **निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर ६० शब्दों में दें :**

(क) गुटेन वर्ग ने मुद्रणयंत्र का विकास कैसे किया ?

(ख) छापाखाना यूरोप में कैसे पहुँचा ?

(ग) इन्क्वीजीशन से आप क्या समझते है। इसकी जरूरत क्यों पड़ी ?

(घ) पाण्डुलिपि क्या है ? इसकी क्या उपयोगिता है ?

(ङ) लार्ड लिटन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिमान बनाया। कैसे ?

३. **दीर्घ उत्तरीय प्रश्न १५० शब्दों में उत्तर :**

(क) मुद्रण क्रांति ने आधुनिक विश्व को कैसे प्रभावित किया ?

(ख) 19वीं सदी में भारत में प्रेस के विकास को रेखांकित करें।

(ग) भारतीय प्रेस की विशेषताओं को लिखें।

(घ) राष्ट्रीय आन्दोलन को भारतीय प्रेस ने कैसे प्रभावित किया?

(ङ) मुद्रण यंत्र की विकास यात्रा को रेखांकित करें। यह आधुनिक स्वरूप में कैसे पहुँचा?

वर्ग परिचर्चा :

1. छपाई की तकनीक को समझने के लिए अपने शिक्षक के साथ नजदीकी प्रेस का भ्रमण करें।
2. आधुनिक समाचार पत्रों के साथ पूववर्ती समाचार पत्रों का तुलनात्मक अध्ययन अपने वर्ग शिक्षक से करें।